

अंतिम समय

इस प्रकार वह काल रात्रि बीती और जैसे-तैसे करके सूर्योदय भी हुआ। पर वह दिन काल-दिवस ही था। डॉक्टरजी के महाप्रयाण का क्रूर, कठोर दिवस! प्रातः तापमान बढ़ते बढ़ते १०६ डिग्री तक पहुँच गया। श्रीमान् घटाटेजी दौड़ते हुये गये और डॉ. हरदास तथा डॉ. खरे को लाये। परन्तु डॉक्टरों ने आशा छोड़ दी और कह दिया कि इनका अन्तकाल समीप है। आशा का अन्तिम तार टूट गया। चारों ओर अपूर्व हाहाकार छा गया। तत्काल टेलीफोन करके नागपुर के सारे प्रमुख अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं को बंगले पर बुला लिया गया। ये लोग जाकर देखते हैं कि ऊर्ध्व-सांस शुरू हो गई है। मृत्यु की काली छाया चारों ओर छा गई ओर हर व्यक्ति उदास और खिन्न अंतःकरण से आंसू पोंछता और हिचकियों को रोकने का प्रयत्न करता हुआ डॉक्टरजी की मृत्यु शय्या के आसपास चक्कर काटने लगा। ऊर्ध्व-श्वास के समय डॉक्टरजी को अत्यन्त वेदना हो रही होगी। लोगों से वह वेदना देखी नहीं जाती थी। बाहर के बरामदों और बगल के कमरों में लोग अधोवदन चुपचाप बैठे थे। किसी के मुख से एक शब्द तक न निकलता था। डॉक्टरजी के कण्ठ की वह भयानक घरघराहट बाहर बैठे हुए लोगों को भी स्पष्ट सुनाई पड़ती थी और हर एक का कलेजा टूक-टूक हो रहा था। निर्दय मृत्यु की वह क्रूरता आंखों से देख सकना असह्य हो रहा था। लगभग एक घण्टे तक इस प्रकार ऊर्ध्व-श्वास चलता रहा। नौ बजकर पच्चीस मिनट हुए। एक दम श्वासोच्छवास मंद पड़ गया और डाक्टरजी की गर्दन एक ओर लटक गई। बस! सबने सोचा कि डाक्टरजी का प्राणान्त हो गया और चारों ओर रोना धोना मच गया। परन्तु इतने में फिर सांस चलती हुई दिखाई दी और किंचित् एक ओर किये हुए होठों और पलकों में कुछ हलचल हुई। प्राण गये नहीं थे। बुझती हुई अग्नि में एक दो चिगारियां बच गई थीं। पर–पर अरे यह क्या? केवल दो ही मिनटों के बाद ठीक नौ बजकर सत्ताईस मिनट पर डाक्टरजी ने अन्तिम सांस छोड़ी—प्राण पखेरू उड़ गया। डॉक्टर हेडगेवार स्वर्गवासी हुए।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सर संघचालक डॉक्टर हेडगेवारजी की मृत्यु हो गई ! !

संघ की प्राणज्योति अदृश्य हो गई

मृत्यु ! कितनी अमंगल कल्पना ! और फिर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालकजी की मृत्यु ! कल्पना की सारी मर्यादाओं को लांधकर भी जिस अमंगल दृश्य को नेत्रों के सम्मुख लाना असम्भव था, वही अन्त:करणों को रुलाने वाला अमंगल दृश्य नागपुर नगर ने उस दिन आंसू भरी आंखों से देखा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्राण-ज्योति उस दिन वुझ गई। संघ की प्राण शक्ति को निर्दय यमदेव लोगों के देखते देखते हर ले गया। "इन्ही नेत्रों से इसी पार्थिव शरीर से" स्वतंत्र हिन्दू–राष्ट्र का वैभव देखने के लिए जो विभूति जन्म भर व्यग्रता पूर्वक प्रयत्नशील रही, उसी का पार्थिव देह आज निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर सदा के लिये सो गया और वे प्यासी आंखें सदा के लिये मिच गईं।

इसकी अपेक्षा अधिक क्रूर आघात असंभव

मृत्यु शय्या के आसपास सैकड़ों स्वयंसेवकों का समूह उपस्थित था। फिर भी यमदूत हमारे प्राणस्वरूप डॉक्टरजी को—आद्य सरसंघ-चालकजी को—हमारी आँखों के सामने ही सहसा उठाकर ले गये। अन्य प्रसंग पर यदि सरसंघचालकजी के एक वाल को भी किसी से धक्का पहुँचता तो ये स्वयंसेवक अपने खून की नदी वहा देते। परन्तु वे ही वीर स्वयंसेवक काल की उस कुटिल लीला को देखकर, दु:ख से विह्वल होकर, रोने और हिचकियां भरने के सिवा और कुछ न कर सके। उनके वश में और क्या था ? जहाँ मानवीय शक्ति पंगु सिद्ध होती है वहां दोनों हाथ ढांग कर अपने मृत स्नेही के प्रति अश्रुजल की अंजलि अर्पण करने अथवा परमेश्वर की प्रार्थना करने के अतिरिक्त और चारा ही क्या है ? जितने आँसू राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ के आद्य सरसंघचालकजी के लिए वहाये गए उतने शायद ही किसी और के लिये वहाये गए हों ? यह राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ के इतिहास में सबसे भयानक दुर्घटना थी। दैव की ओर से इस आघात से वढ़ कर और कोई आघात हो सकना असंभव है।

अन्त्य दर्शनार्थ

तुरन्त ही यह शोकजनक समाचार तार द्वारा सब ओर भेजा गया। नागपुर में "महाराष्ट्र" और पूना में "काल" पत्रों ने विशेषांकों के द्वारा इस समाचार को प्रकाशित किया। सारा वातावरण ऐसा स्तब्ध और हतप्रभ हो गया मानों आकाश से बिजली टूट पड़ी हो। नागपुर में डॉक्टरजी के निधन की वार्ता दावानल के समान चारों ओर फैल गई और हजारों स्वयंसेवकों और नागरिकों की टोलियां पागलों के समान श्रीमान् घटाटेजी के बंगले की ओर दौड़ पड़ी। दोपहर में आसपास के गांवों से भी लोग पहुँचने लगे। अकोला, अमरावती, चांदा, भंडारा, वर्धा, हिंगनघाट, आर्वी, काटोल, उमरेड, सावनेर, रामटेक, कामठी आदी स्थानों से रेल और मोटर से सैकड़ों कार्यकर्ता और स्वयंसेवक शवयात्रा के समय तक नागपुर में आ पहुँचे। दोपहर भर लोगों के झुण्ड के झुन्ड डॉक्टरजी के अन्त्य-दर्शन के लिए लगातार आते ही जाते थे। उनकी कतार जो सुबह से चालू हुई तो शाम तक अखण्ड रूप से चालू थी। प्रौढ, तरुण और बाल स्वयंसेवक आकर डॉक्टरजी के पार्थिव शरीरका अन्तिम दर्शन करते, प्रणाम करते और भारी अन्तःकरणों के साथ लौट जाते। छोटे-छोटे बाल स्वयंसेवक चार-चार मील से पैदल दौड़ते हुए आये। कड़ी धूप में प्यास से बेकल मुर्गों के मुखों के सदृश उनके मुख मुरझाये हुए थे। बेचारे बच्चे हतबुद्धि से एक ओर जा बैठते थे। श्रीमान् घटाटेजी के बंगले की चार दीवारी में और बाहर भी सहस्रों लोगों की छोटी-छोटी टोलियां खिन्न वदन परस्पर कानाफूसी करती हुई खड़ी थीं। किसी को यह न सूझता था कि क्या बात की जाय। प्रत्येक मुख पर खिन्नता की छाया थी, नेत्रों में अश्रु उमड़ रहे थे और दृष्टि तो शून्य की ओर लगी थी।

निसर्ग द्वारा समवेदना प्रदर्शन

सायंकाल ५ बजे शवयात्रा निकालने का निश्चय किया गया था। लगभग चार बजे अकस्मात् आकाश में बादल घिर आये। पहले रिमझिम और पश्चात् मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हुई। मानों प्रकृति देवी इस वर्षा

के द्वारा सहानुभूति के आंसू बहा रही थी। पर इस परिस्थिति में भी शवयात्रा के लिए एकत्रित होनेवाले लोगों का तांता न टूटा। बरसते मेंह में सहस्रों लोगों का प्रचण्ड समुदाय घटाटेजी के बंगले के समक्ष शांति के साथ खड़ा था। नागपुर का प्रत्येक स्वयंसेवक उस समय वहां उपस्थित था। लगभग पांच बजे वर्षा का वेग कम हुआ और शवयात्रा की तैयारी की गई। यद्यपि वर्षा रिमझिम रिमझिम हो ही रही थी, फिर भी निश्चित समय शवयात्रा का चलना प्रारम्भ हुआ। शवयात्रा के पूर्व अनेक संस्थाओं की ओर से शव पर पुष्पहार चढ़ाये गये।

शवयात्रा

शव की वह यात्रा नागपुर के इतिहास में अति प्रचण्ड और अभूतपूर्व थी। यात्रा के आगे आगे साईकिल सवारों की टूकड़ियां थीं। उनके पीछे सरल वेश–भूषा में नग्न सिर, मौनरूप सहस्रों स्वयंसेवक चार चार की पंक्तियों में अनुशासनपूर्वक चले जा रहे थे। उनके पीछे नागपुर के सहस्रों नागरिक, उनके पीछे शव और राष्ट्रीय भगवा ध्वज और फिर अन्त में प्रमुख नागरिक, स्वयंसेवक गण और साईकिल सवारों की टुकड़ियां थीं। यह प्रचण्ड मूक शवयात्रा एक मील से भी अधिक लम्बी थी। नागपुर के कांग्रेस, हिंदू महासभा, फॉरवर्ड ब्लॉक, सोशॅलिस्ट पार्टी, मजदूर दल, हरिजन बन्धु, आदि सभी पक्षोपपक्षों के लोग और महिला समुदाय भी इस शवयात्रा में सम्मिलित हुए थे। नागपुर का प्रत्येक प्रमुख नागरिक डॉक्टरजी के अन्त्य दर्शनार्थ उस शवयात्रा में दिखाई पड़ता था। शवयात्रा महाराज बाग रोड, युनिवर्सिटी, सीताबर्ड़ी मेन रोड, लोहे का पुल, सुभाषचंद्र रोड, तिलक मूर्ति, रुईकर रोड, (वॉकर रोड) चंडी के मन्दिर से होती हुई डॉ. मुंजे के घर के सामने से केन्द्र संघस्थान पर जा पहुँची। मार्ग में तिलक पुतला, चिटनीस पार्क, बड़कस चौक आदि स्थानों पर सहस्रों नागरिकों का अपार जनसमूह अन्त्य दर्शन के लिए खड़ा था। मार्गों के दोनों ओर लोगों की टोलियां खड़ीं थीं जो शव को अभिवादन कर रही थीं। यात्रा के मार्ग के दोनों ओर के घरों छज्जों और अटारियों पर भी आबाल वृद्ध स्त्री–पुरुषों की अपार भीड़ शवयात्रा के अभूतपूर्व

दृश्य के दर्शनार्थ खड़ी थी। स्थान स्थान पर शव को पुष्पहार अर्पित किये गये और पुष्प–वृष्टि की गई। इसमें पारसी सज्जनों ने भी भाग लिया। यात्रा के स्थान २ पर छाया चित्र लिए गए। धीरे धीरे भारी पैरों से यह सर्पाकार शवयत्रा घुमावदार मार्ग पार करते करते चार घण्टे में केन्द्र संघस्थान पर पहुंची।

तपोभूमिपर दहन

रेशीमबाग संघस्थान पर चिता–दाह करने की आज्ञा ठीक समय पर मिल चुकी थी। अतः यह विशेष बात हुई की जिस कार्य के लिए डॉक्टरजी ने अपना जीवन अर्पित किया, वह कार्य जहां चला करता था, जहां केन्द्र संघ–शाखा और शारीरिक शिक्षा वर्ग के दैनिक कार्यक्रम हुआ करते हैं, और जिसे इसी कारण डॉक्टरजी तपोभूमि कहा करते थे उसी तपोभूमि में डॉक्टरजी की पार्थिव देह का चितादाह भी हो सका। जो भूमि शिक्षा वर्ग में स्वयंसेवकों की चालीस दिन की विमल तपस्या से पावन हुई थी उसी भूमि में शवदाह हुआ। संघस्थान के बीचोंबीच विशाल मंडप तैयार किया गया था। उसके नीचे चिता सजाई गई। डॉक्टरजी के ज्येष्ठ भ्राता के हाथों यथा विधि शव चिता पर रखा गया। इसके पश्चात् सब लोगों ने खड़े होकर संघ प्रार्थना की और ध्वज–प्रणाम और परमपूजनीय आद्य सरसंघचालकजी के पार्थिव देह को अंतिम प्रणाम किया गया। उस समय सारे स्वयंसेवकों के अन्तःकरण दुःखावेग से भर आये। तदनन्तर चिता में चन्दन, कपूर, घी आदि डालकर वैदिक रीति से मन्त्राग्नि जलाई गई और शीघ्र ही चिता की उन लपलपाती हुई ज्वालाओं ने हमारे परमपूजनीय डॉक्टरजी के उस भव्य पार्थिव देह को आत्मसात् कर लिया। वह प्रेम भरी प्रसन्नमुख मूर्ति अब अपने इन नेत्रों को न दिखाई पड़ेगी, अब हम डॉक्टरजी के प्रेम भरे शब्द न सुन सकेंगे। इन कल्पनाओं से स्वयंसेवकों के हृदय व्यथित हो गये। और धू–धू जलती हुई चिता को बार बार वंदन करते हुए, पुनः पुनः मुड़कर चिता को देखते हुए सारे स्वयंसेवक अत्यन्त उदास अन्तःकरणों, खिन्न वदनों और भारी पैरों से किसी प्रकार रात्रि के लगभग १०॥ बजे दहनभूमि से लोटे। उधर चिता

में ज्वालाएं नाच रहीं थीं, इधर स्वयंसेवकों के हृदयों में भी ज्वालाएँ धधक रही थीं। आद्य सरसंघचालकजी की मूर्ति चिता की ज्वालाओं में विलीन हो गई। परन्तु स्वयंसेवकों के अन्त:करणों की ज्वालाओं में वही मूर्ति पुन: प्रगट होकर उनके हृदयसिंहासनों पर सदा के लिए विराजमान हो गई। वही मनोमय मूर्ति अब प्रत्येक स्वयंसेवक को स्फूर्ति देगी और उसी की प्रेरणा से यह महान् ईश्वरीय कार्य अन्तिम यश:सिद्धि का मार्ग क्रमण करते हुए बढ़ता जायगा।

★ ★ ★

३ : श्रद्धांजलि

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर से डॉक्टरजी की पुण्यात्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उनकी मृत्यु के तेरहवें दिन अर्थात् ३ जुलाई सन् १९४० को अखिल भारत की सात सौ संघ-शाखाओं में संघ की विशिष्ट पद्धति से सभायें हुईं। इन सभाओं में कार्यकर्ताओं तथा स्वयंसेवकों ने अपने हृदय-कपाट खोलकर अपने अन्तःकरण की तीव्र भावनाओं को प्रकट किया। डॉक्टरजी का गुणगान कर उन्होंने अपने अन्तःकरण को पावन किया तथा अपना सर्वस्व समर्पण कर संघकार्य को अन्तिम यश प्राप्त करा देने का प्रण किया। इस अवसर पर डॉक्टरजी की स्मृति में आद्य-सरसंघचालक-प्रणाम समर्पित किया गया।

केन्द्र संघस्थान का वृत्तान्त—

तारीख ३ जुलाई को संध्या समय ६ बजे केन्द्र संघस्थान रेशमबाग पर परमपूजनीय डॉक्टरजी की दहन-भूमि के सामने नागपुर की सब उपशाखाएँ उपस्थित हुईं, तथा उस अवसर पर मध्य-प्रांतीय संघचालक श्री. बाबासाहेब पाध्ये, पूजनीय आबाजी हेडगेवार और परमपूजनीय माधवरावजी गोलवलकर के भाषण हुए। उसी अवसर पर प्रांतीय संघ-चालकजी ने डॉक्टरजी की इच्छानुसार परमपूजनीय माधवरावजी गोलवलकर के नूतन सरसंघचालक के स्थान पर नियुक्त होने की महत्वपूर्ण घोषणा की। इस प्रसंग पर दिए गए भाषण नीचे दिये जाते हैं।

प्रांतीय संघचालक माननीय बाबासाहेब पाध्ये का भाषण

"आज हम लोग एक अत्यन्त विलक्षण तथा भयानक परिस्थिति में एकत्र हुए हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालक की मृत्यु की भयंकर दुर्घटना देखने का दुर्भाग्य हमें प्राप्त होगा, ऐसा यदि किसी ज्योतिषी ने कहा होता, तो हम उसपर कदापि विश्वास न करते; पर अपनें संघ के चैतन्यमय प्राण, अपने परपूजनीय डॉक्टर ही अपने में से निकल गये और आज उनके तेरहवें दिन इस प्रकार एकत्र होने का हम सब पर प्रसंग आया है। पिता की वात्सल्यपूर्ण छत्रछाया के निकल जाने पर बच्चों की जो दशा होती है, वही दशा आज हमारी है। अपने डॉक्टर साधारण व्यक्ति न थे। वे एक महान् शक्ति थे। संघ की तो वे जीवन–शक्ति ही थे। इस अमोघ शक्ति के निकल जाने से आज हमारा सारा भारतवर्ष शोक–सागर में डूब गया है।

"डॉक्टर साहब अपने सामने छुटपन से ही एक उच्चतम ध्येय रखकर काम करते थे। अठारह वर्ष लगातार विचार तथा तपश्चर्या करने के पश्चात् ही आपने एक विचार–प्रणाली निश्चित कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की। हिंदू राष्ट्र को वैभव के शिखर पर पहुँचाने वाले इस महान् कार्य को आपने केवल पांच स्वंयंसेवकों के साथ आरम्भ किया। यह अल्पारंभ श्रेयस्कर सिद्ध होने से उन्होंने आज पांच से बढ़ा कर, एक से आंचार–विचारवाले लाखों लोगों का संगठन निर्माण किया है। आपने अपनी विचार–प्रणाली तथा कार्य–पद्धति की रचना इस कुशलता के साथ की है कि जिससे पक्षोपपक्ष के वैमनस्यों को टालते हुए तथा सब प्रकार के पक्ष–भेदों से अलिप्त रहते हुए संघ–कार्य की अखंडित प्रगति होती रहेगी। प्रचलित राजकाज से संबन्ध न रखने में आपने असाधारण चातुर्य प्रकट किया है।

आपने अपनी कार्य कुशलता तथा निष्ठा से राष्ट्रव्यापी प्रचण्ड संगठन का सुख–स्वप्न सत्य–सृष्टि में परिणत कर दिखाया। संगठन केवल व्याख्यान से उत्पन्न नहीं होता। उसमें सजीव अन्तःकरणों को एक सांचे में ढ़ालना होता है। एक ही ध्येय के लिए, एक ही मार्ग पर चलनेवाले

लाखों तरुणों को एक ही सूत्र में बांधना होता है। संघ के स्वयंसेवकों का बन्धुत्व तथा ऐक्य–भाव अन्य स्थानों में क्वचित् ही मिलेगा। यह किस कार्य का फल है ? मैं कहूंगा, परमपूज्य डॉक्टर साहब के पुण्य का। आपके हृदय में इस कार्य की यश–सिद्धि "याचि देही याचि डोळा" अर्थात् इसी जन्म में, इन्हीं आंखों से देखने की बड़ी प्रबल इच्छा थी। परन्तु ईश्वरेच्छा कुछ और ही थी। यद्यपि डॉक्टरजी हमें छोड़ कर चले गये हैं पर वे हमें अपना मार्ग दिखा कर ही गए हैं। वे इस कार्य को अपूर्ण अवस्था में ही छोड़कर चले गये हैं। यह बात हमें न भूलनी चाहिए। उनकी अतृप्त आशा व आकांक्षाओं को पूर्ण करना हमारा आद्य कर्तव्य है।

"हम सबका दु:खी होना स्वाभाविक है। परन्तु अब इस शोकावेग को विवेक के बांध से बांधकर आगे का कार्य किस प्रकार दूगने जोर से आगे बढ़ेगा, इसका विचार करना चाहिए। अब इसके पश्चात् संघरूप में ही डॉक्टर साहब हमें दीखेंगे। संघ के कार्य को अमर्यादित बढ़ाना ही डॉक्टरजी को जीवित रखना है। यह दायित्व हमारे तुम्हारे समान सब छोटे–बड़े स्वयंसेवकों का है। अब केवल अश्रुसिंचन न करते हुए संघकार्य को अधिकाधिक आगे बढ़ाना, यही डॉक्टरजी के प्रति हमारा प्रेम प्रदर्शित करने का एक मात्र मार्ग बचा है। यही कार्य करने का निश्चय हम सबको आज अपने मन में करना चाहिए।

"डॉक्टरजी को संघ की हर तरह की चिंता होने के कारण अपना इहलोक का जीवन समाप्त होने के पहिले ही उन्होंने आगे के सब कार्य की पूर्ण व्यवस्था कर दी है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संगठन चालकानुवर्ती होने के कारण, उसके चालक की प्रत्येक आज्ञा हमारे लिए परम वंदनीय है। गत दि. २० को, मृत्यु के एक दिन पूर्व डॉक्टरजी ने अपने पीछे संघ–कार्य की मुख्य धुरी परमपूजनीय माधवरावजी गोलवलकर पर सौंप दी है। आद्य सरसंघचालक के नाते उन्होंने अपना सर्वाधिकार परम-पूजनीय माधवरावजी के स्वाधीन किया है। इस बात की मैं आज घोषणा करता हूं कि हमारे आद्य सरसंघचालक की अंतिम इच्छानुसार परम-

पूजनीय माधवरावजी गोलवलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक हुए हैं। वे अब अपने लिए डॉक्टरजी के स्थान पर है। अपने नूतन सरसंघचालक को मैं अपना पहिला प्रणाम सादर समर्पित करता हूँ।"

वयोवृद्ध पूजनीय आबाजी हेडगेवार का भाषण—

"राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्वन्ध में मैं कुछ कहूं, ऐसी आवश्यकता नहीं दीखती। संघ–कार्य का ध्येय तथा कार्य–पद्धति डॉक्टरजी ने पहले ही बतला दी है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करने का कारण मुझे नहीं दिखाई देता। केवल यह कार्य आगे किस प्रकार जोर से बढ़ाना चाहिए, इसका विचार करना होगा। डॉक्टरजी ने इसी कार्य को अपने हाथ में लिया था, जो एकसौ पचास वर्ष से अधूरा पड़ा था। किन्तु उन्हें भी यह कार्य अधूरा छोड़कर ही जाना पड़ा। अब उसे पूरा करने का भार आप लोगों पर आ पड़ा है। डॉक्टरजी ने यह भगवा ध्वज तथा संघरूपी यह स्वकष्टार्जित सम्पत्ति हमारे स्वाधीन की है। उन्होंने यह कार्य किस परिस्थिति में किया, इसे स्मरण करो। सव प्रकार के विरोध तथा उपहास की परवाह न करते हुए उन्होंने हिन्दू राष्ट्र की घोषणा की। "हिन्दुस्थान हिन्दुओं का" इस प्रकार निर्भीक गर्जना करने वाले वे ही पहिले वीर थे। डॉक्टरजी ने आपके सामने कार्य का आदर्श रखा है। तथा आपको हजारों साथी भी मिला दिये हैं। अतः आप कार्य में जुट जायँ। डॉक्टर गए, इसके लिये दुःख करने की आवश्यकता नहीं। उनका अन्त नहीं हुआ, न कभी हो सकेगा। वे अजरामर हैं; उनकी आत्मा अमर है। वह आपके कार्य को बढ़ाते हुए देखकर प्रसन्न होगी और स्वर्ग से आशीर्वाद देगी। किन्तु ध्यान रखो, कि आज तक कोरी बातों से कोई कार्यसम्पन्न नहीं हुआ। इसके लिए सारी शक्ति लगाकर परिश्रम करना होगा, खून सुखाकर यश के लिए कीमत देनी होगी। जिस दिन तुम्हारा कार्य यशस्वी होगा, उसी दिन डॉक्टरजी को सच्ची शांति मिलेगी। यह शांति उन्हें शीघ्र ही प्राप्त हो, इसलिए अत्यन्त वेग से कार्यारम्भ करो। इन्हीं हाथों से छोटे से वड़ा किया हुआ मेरा केशव आज मुझे छोड़कर चला गया, तो भी कोई चिन्ता नहीं। परमेश्वर

मानों हम सब हिन्दुओं को कसौटी पर कस रहा है। हमें अपनी कृति से सारे संसार को दिखा देना चाहिए कि केवल नाम के हिन्दू इस हिन्दुस्थान में नहीं रहते और यह बात अपने आप नहीं हो सकती। इसके लिए हमें अपने रक्त का बूंद-बूंद हर दिन सुखाना होगा। डॉक्टरजी ने संघ के लिए अत्यन्त कष्ट उठाया तथा कई रातें उन्होंने विना पलक लगाए बिताईं। अपनी शक्ति, सर्वस्व, ध्येयपूर्ति के लिए खर्च हो इस उद्देश्य से उन्होने सर्वस्व का बलिदान कर संसार के सुखों को ठुकराया। उनकी दृढ़ता, साहस तथा कार्य-निष्ठा आपने देखी ही है। हमें ध्यान रखना चाहिये, कि हमारे डॉक्टर हमें छोड़ कर गये नहीं हैं। आज भी हम उन्हें माधवरावजी गोलवलकर के रूप में देख सकते हैं। हमें उनके सब आदेश डॉक्टरजी के आदेश समझकर ही पालन करने चाहिएँ, यही मुझे अन्त में कहना है।"

सरसंघचालक पूजनीय गुरूजी का भाषण—

इसके बाद नूतन सरसंघचालक के नाते परमपूजनीय माधवरावजी गोलवलकर ने अपना पहिला भाषण दिया। उन्होंने कहा,

"आज आपके सामने खड़ा होकर बोलने के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं। यह कल्पना ही बहुत भयंकर है, कि आज हम लोग परमपूजनीय आद्य सरसंघचालक को श्रद्धांजलि समर्पित करने को एकत्रित हुए हैं। हम अपनी श्रद्धांजलि उन्हें किस प्रकार अर्पण करना चाहते हैं? हमारी माँ हम पर जिस प्रकार प्रेम करती है, वैसे ही प्रेम का अनुभव उनके सहवास में रहने पर हमें मिला है। उन्होंने हम पर मातृवत् प्रेम किया है। वह प्रेम शब्दों से प्रकट नहीं किया जा सकता। वस्तुतः निरपेक्ष मनुष्य ही प्रेम करना जानता है। बाकी के लोग केवल शब्दों का जाल फैलाते हैं। कुछ समय के पहिले किसी ने मुझ से पूछा कि डॉक्टरजी के विषय में आपका क्या ख्याल है? मैं समझता हूं कि इस प्रश्न का उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं। डॉक्टर स्वयं एक अत्युच्च आदर्श बन चुके थे। और ऐसे महापुरुष के चरणों में जो नत-मस्तक नहीं हो सकता, वह संसार

में कुछ नहीं कर सकता। उनमें माँ का वात्सल्य, पिता का उत्तरदायित्व तथा गुरु की शिक्षा का समन्वय था। ऐसे महान् व्यक्ति की पूजा करने में मुझे अतिशय गर्व मालूम होता है। यदि मैं ऐसा कहूं कि वे ही मेरे इष्ट देव थे, तो इसमें किंचित् भी अतिशयोक्ति न होगी। डॉक्टरजी की पूजा व्यक्तिपूजा नहीं हो सकती और यदि उसे कोई व्यक्तिपूजा समझे, तो भी मुझे उसमें अभिमान ही होगा। उनके प्रति ये सद्भाव तथा ये आदरवृत्ति मुझमें एक ही दिन में उत्पन्न नहीं हुई है। आदमियों को परखने की मेरी वृत्ति अत्यन्त छानबीन की है। आरम्भ मे मैं उन्हें केवल एक निराली पद्धति से काम करने वाला एक नेता समझता था। उसके अतिरिक्त डॉक्टरजी के प्रति मेरे मन में किसी भी प्रकार की भावनाएँ न थीं। किन्तु केवल पन्द्रह–सोलह दिन के निरन्तर सहवास से मुझे अनुभव हुआ कि इस सर्व साधारण मनुष्य की तरह रहने वाले व्यक्ति में सचमुच ही कुछ असाधारणता है। किसी प्रकार का सहारा न होते हुए भी इतना प्रचण्ड कार्य करनेवाला व्यक्ति सचमुच में एक महान् विभूति ही हो सकता है। अतः व्यक्ति इस नाते से भी उसकी पूजा करने से मैं न हिचकिचाऊँगा। चंदन, पुष्प आदि से पूजा करना तो हेय मार्ग है; जिसकी पूजा करना उसके समान बनने का प्रयत्न करना यही सच्ची पूजा है। 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्' यही तो हमारे धर्म की विशेषता है और इसी प्रकार की पूजा हमें करनी चाहिए। डॉक्टरजी की दी हुई इस पूंजी के भरोसे हमें आगे बढ़ना है। राष्ट्र के लिए हृदय के तार तार में कसक होती रहे, इतनी राष्ट्र विषयक आत्मीयता हममें होनी चाहिए। भावनावेश में आकर एक सामान्य मनुष्य भी हुतात्मा बन सकता है। किन्तु दिनोंदिन शरीर को घुलाना, तथा वर्षानुवर्ष अपने आपको कण–कण जलाते रहना केवल अवतारी पुरुष का ही काम है और हमारे सौभाग्य से ऐसी विभूति हममें निर्माण हुई। यदि हम परमपूज्य डॉक्टरजी के दिव्य आदर्श का पालन प्रामाणिकता के साथ करें और जहां पर उन्होंने इस महान् संगठन के सूत्र को छोड़ा है, वहां से उसे उठाकर आगे ही बढ़ाते ले जायें, तभी यह कहा जा सकेगा कि हमने अपने कर्तव्य का पालन ठीक रीति से किया। उनकी कृपा तथा बलिदान से हमारा कार्य पूर्ण होगा ही।

"डॉक्टर साहब के कार्य की परिणति पंद्रह साल में केवल एक लाख स्वयंसेवक संगठित होने में हुई; इससे अधिक संगठन न हो सका। इस सम्बन्ध में बहुधा लोग कई प्रकार के तर्क वितर्क करते हैं और कभी कभी यह भी कहने का साहस करते हैं, कि डॉक्टरजी की विभूति ही अपर्याप्त थी। परन्तु वास्तव में उनकी महत्ता में इंचमात्र भी न्यूनता न थी। हम लोग ही उनके सच्चे अनुयायी होने के अपात्र सिद्ध हुए। हिन्दू समाज के पत्थरों में से एक लाख चैतन्य-युक्त मूर्तियों का निर्माण होना ही उनकी महानता का प्रमाण है। आज तक, 'संगठन चाहिये, संगठन चाहिये' ऐसा शोर मचानेवाले कई लोग हुए, किन्तु सच्चे हृदयों का अभेद्य संगठन किसने निर्माण किया? एक-एक स्वयंसेवक के विषय में चिंता करनेवाले हजारों हृदय किसने निर्माण किये? डॉक्टरजी ने असंभव को सम्भव कर दिखाया?

"डॉक्टरजी की पूजा करने के लिये हम लोग श्रद्धापूर्वक एकत्रित हुए हैं। इस संगठन के द्रष्टा की पूजा करने का एकमेव मार्ग है-अपने संकीर्ण व्यक्तित्व को भूलकर इस संगठन रूपी विराट देह का संवर्धन करना। हम डॉक्टर साहब के पुजारी कहलाने के अधिकारी तभी बनेंगे, जब जिस ध्येय की प्राप्ति के लिए यह संगठन निर्माण किया गया है, उस ध्येय को शीघ्र प्राप्त करने के निश्चय से हम अपने-अपने स्थान पर संघ-कार्य में डट जायंगे। डॉक्टरजी ने मुझ सरीखे बिल्कुल साधारण मनुष्य पर इस प्रचण्ड कार्य का भार सौंपा है। उनका यह निर्वाचन देखकर मुझे श्रीरामकृष्णजी की एक बात याद आती है। उनके एक धनवान शिष्य के घर में एक अति मूर्ख तथा निरुपयोगी लड़का था। पर वह रामकृष्णजी के लिये नित्य, नियमितता से पूजा के लिये फूल ला दिया करता था। श्रीरामकृष्णजी ने उस लड़के को अपने पास रख कर 'अ, आ' सिखाने का प्रयास किया। छः मास तक माथा पच्ची करने पर भी वह 'अ' तक न लिख सका पर रामकृष्णजी के स्वर्गवास के पश्चात् वह लड़का उनके आशीर्वाद से उपनिषद जैसे ग्रंथों पर प्रवचन करने लगा। तथा बड़े-बड़े विद्वानों को भी ज्ञानामृत देने लगा। महापुरुष केवल अपने स्पर्श से किसी भी मनुष्य में महान् योग्यता उत्पन्न करते हैं, तथा उसे

उच्च पद पर पहुँचा सकते हैं। डॉक्टरजी के पुण्य प्रसाद और आशीर्वाद से मेरे विषय में भी वैसी ही परिस्थिति होगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। परमपूजनीय डॉक्टरजीने मुझ पर सरसंघचालकत्व की कल्पनातीत महत्व की जिम्मेदारी का कार्य सौंपा है। किन्तु यह तो है विक्रमादित्य का सिंहासन इस पर बैठनेवाला गड़रिये का लड़का भी योग्य न्याय ही करेगा। आज इस सिंहासन पर बैठने का प्रसंग मुझ जैसे साधारण मनुष्य को प्राप्त हुआ है। किन्तु डॉक्टरजी मेरे मुंह से योग्य बातें ही कहलायेंगे। इस में कोई शंका नहीं, कि हमारे महान् नेता के पुण्यप्रताप से, मेरे हाथ से योग्य बात ही होंगी। यदि कुछ त्रुटियां हुई तो मैं दोषी होऊंगा। अब हम पूर्ण श्रद्धा के साथ अपने कार्य में अग्रसर हो जायें। यह संघ-कार्य पहिलें जैसी निष्ठासे, किन्तु दूने उत्साह से, और अधिक वेग से, आगे बढ़ायें। यह जबरदस्त संगठन हमें सौंप कर डॉक्टरजी चल बसे हैं। अब अनेक उपदेशक हमें उपदेश देने के लिये आगे बढ़ेंगे। किन्तु मैं इन सभी उपदेशकों को नम्रतापूर्वक, पर स्पष्ट रूप से, यही कहना चाहता हूं कि हमारे डॉक्टरजी ने मत-मतांतरों के कोलाहल में विलीन होने लायक पिलपिला संगठन हमारे स्वाधीन नहीं किया है। हमारा संगठन एक अभेद्य किला है। इसकी दुर्गबन्दी पर चंचु-प्रहार करने वालों की चोंचें टूट जावेंगी। इतनी दृढ़ तथा मजबूत मोर्चेबन्दी हमारे डॉक्टरजी ने कर रक्खी है। हमारा मार्ग उन्होंने बिलकुल निश्चित रूप से निर्धारित कर दिया है और हम लोग उसी मार्ग से जायेंगे, ऐसा हमने दृढ़ निश्चय किया है। इसी में राष्ट्र का अंतिम कल्याण है और केवल इसी मार्ग से हिन्दू जाति को पूर्व वैभव के मंगल दिवस प्राप्त होने वाले हैं। किसी भी प्रकार के विरोध की परवाह न करते हुए, तथा सब प्रकार के मतभेदों के बवंडर में न फंसते हुए, हम अपने मार्ग पर अटल रहें। इसके लिए अंतःकरण में संघ-कार्य की प्रखर ज्योति सदैव जागृत रखकर तथा मन को कार्य की ओर निरन्तर प्रेरित करते हुए, अपना यह कार्य अथक करते रहें। आप सब मित्र और बंधुओं के सहकार्य से डॉक्टरजी के इस कार्य की इष्ट सिद्धि हम प्राप्त कर ही लेंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।"

अंत में परमपूजनीय डॉक्टरजी की स्मृति में सादर प्रणाम किया गया और उसके बाद यह कार्यक्रम समाप्त हुआ। इस अवसर पर नागपुर के सब छोटे बड़े स्वयंसेवक अत्यन्त प्रचण्ड संख्या में उपस्थित थे।

प्रथम मासिक श्राद्ध दिन—

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के केन्द्र-स्थान, अर्थात् नागपुर में परम पूजनीय डॉक्टर हेडगेवारजी का प्रथम मासिक श्राद्ध–दिन सैनिक पद्धति से मनाया गया। इस अवसर पर अखिल भारतवर्ष से जगह जगह के संघचालक, कार्यकर्त्ता तथा प्रतिनिधिगण अपने दिवंगत् नेता को सैनिक सन्मान से प्रणाम करने का उद्देश्य से एकत्रित हुए थे। पंजाब, युक्तप्रांत बंगाल, मध्यभारत, महाकोशल, मद्रास, कर्नाटक, खानदेश, बरार, मध्यप्रांत आदि प्रांतों तथा देशी रियासतों में फैली हुई प्रमुख शाखाओं तथा जिलों के चालक इस अवसर पर उपस्थित थे। लोकनायक अणे और डॉ. मुंजे खास इसी अवसर के लिये यहां आये थे।

रेशम बाग संघस्थान में जहां परमपूजनीय डॉक्टरजी के पार्थिव शरीर का दहन हुआ था, उस स्थान को लता पल्लवों, पुष्पों इत्यादि से सजाया गया था, जिससे उस भूमि का दर्शन कर सकें उत्तर की ओर के विस्तृत मैदान में बड़े–बड़े मंडप बना कर उनमें निमन्त्रित सज्जनों एवं प्रेक्षक लोगों के बैठने का प्रबन्ध किया गया था। व्यासपीठ का मंडप बीच में था और उसके बाईं ओर संघचालकों के बैठने के लिए मंडप बनाया गया था। व्यासपीठ के सामने के मैदान में परमपूजनीय डॉक्टरजी के अनेक प्रसंगों के चित्र सजाये गये थे, तथा उनके सामने ध्वज स्तम्भ स्थित था। इस प्रसङ्ग पर डॉक्टरजी को श्रद्धाञ्जली अर्पण करने के हेतु नागपुर निवासियों का प्रचण्ड समुदाय उपस्थित था। इसमें नागपुर के सभी प्रमुख नागरिक सम्मिलित थे। जिनमें कु. फतेहसिंहराव भोंसले, सरदार गुजर श्रीसन्त पाचलेगांवकर महाराज, सर कर्नल कुकडे, श्री. तांबे आदि व्यक्ति विशेष उल्लेखनीय हैं। स्त्री समुदाय भी बहु संख्या में उपस्थित था।

सायंकाल को ठीक पांच बजे कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। मेघराज ने बड़ी कृपा की थी। अतः सर्वत्र उत्साह दिखाई पड़ता था। परन्तु सच देखा जाय तो यह उत्साह यथार्थ में उत्साह न होकर कार्यक्रम निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त हो जावेगा, इसका संतोष था। वस्तुतः इस समय का वातावरण गम्भीर था।

दोनों तरूण अणीकिनी तथा दोनों बाल अणीकिनी घोष सहित मैदान में पहुँचने के थोड़े ही समय उपरांत नूतन सरसंघचालक परमपूजनीय माधवरावजी गोलवलकर संघ–स्थान पर आ पहुँचे। उनका आगमन होते ही उन्हें सैनिक अभिवंदना दी गई। सरसंघचालकजी ने ध्वज को तथा परमपूजनीय डॉक्टरजी के चित्र को पुष्पहार समर्पित किया और झंडे को फहराया। तत्पश्चात् संघ की प्रार्थना हुई। "प्रत्यूत् प्रचलनम्" (Review order March) "प्रदक्षिणा संचलनम्" (March–Past) "स्वागत प्रणाम" (Regimental Salute) "दाहसंकार मंदचल" (Funeral Slow March) हुआ। इस कार्यक्रम के समय चारों ओर स्तब्धता तथा शोक की छाया दृष्टिगोचर हो रही थी।

इसके उपरान्त परमपूजनीय आद्य सरसंघचालक डॉक्टर हेडगेवार जी के सैनिक गणवेषधारी भव्य चित्र को विभिन्न प्रांतों, जिलों तथा प्रमुख शाखाओं के संघचालकों ने पुष्पहार समर्पित किये।

इसके पश्चात् डॉ. हेडगेवारजी को सम्बोधित करते हुए, एक स्वयंसेवक द्वारा रचित, सारे स्वयंसेवकों की भावनाओं को तीव्रता से प्रकट करने वाला "अमूर्त मूर्त मूर्तिमंत तुज समान होऊं दे" यह गीत गाया गया।

नागपुर संघचालक श्रीमान् बाबा साहेब घटाटे जी ने प्रथमतः प्रास्ताविक भाषण देकर,परमपूजनीय डॉक्टर हेडगेवारजी ने हिन्दू–धर्म, संस्कृति तथा देश रक्षा के लिए अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति में निर्मित तथा बढ़ाए हुए इस राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सङ्गठन का नेतृत्व जिन महान् व्यक्ति को सोपा, उन परमपूजनीय माधवरावजी गोलवलकर के नेतृत्व में संघ का कार्य शीघ्र ही अपनी चरम सीमा तक पहुँच सकेगा, ऐसा

विश्वास व्यक्त करते हुए, अपने नूतन सरसंघचालक जी को प्रणाम किया। तत्पश्चात् बम्बई प्रांतीय संघचालक श्री. काशीनाथरावजी लिमये, लखनऊ के एडवोकेट श्री. तेजोनारायणजी, श्रीमान् लोकनायक बापूजी अणे, श्रीयुत बाबासाहेब खापर्डे तथा श्रीयुत डॉ. मुंजे आदि सज्जनों के बड़े मार्मिक व्याख्यान हुये।

नूतन सरसंघचालकजी का भाषण—

सबके पश्चात् नूतन सरसंघचालक परमपूजनीय माधवरावजी गोलवलकर, 'गुरुजी' समारोप का भाषण देने के लिए खड़े हुए। आपने कहा, "इस अवसर पर मेरी मनोस्थिति बड़ी ही विचित्र है। अ ी तक जो भाषण हो चुके हैं, उनके उपरांत मैं कुछ बोल सकूंगा, ऐसा मुझे नहीं प्रतीत होता। हम लोग अपना एकमेव नेता खो बैठे हैं। इससे अधिक भयंकर दुःखद घटना और कोई हो सकेगी, ऐसा मैं तो नहीं मानता। परम-पूजनीय डॉक्टरजी की इच्छा तथा आज्ञा के कारण मैं इस स्थान पर आरूढ़ हुआ हूं। मेरे सम्बन्ध में अभी तक जो कुछ कहा गया है, वह केवल डॉक्टरजी के पुण्य प्रताप का फल है, ऐसा मैं समझता हूं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संगठन अमर है। यद्यपि साक्षात् उसके संस्थापक, आद्य सरसंघचालक इस लोक से प्रस्थान कर गये हैं, तो भी यह संगठन सदैव बढ़ता ही जायगा। आज तक के सारे आन्दोलन व्यक्ति-निष्ठ थे; पर हमारा संगठन तत्वनिष्ठ है, यह हम संसार को दिखा देंगे। कुछ लोगों का ऐसा आक्षेप था कि हम स्वयंसेवक व्यक्तिपूजक हैं। इसका हमें दुःख नहीं। परन्तु डॉक्टरजी के बाद भी संघ के सब स्वयंसेवक पूर्ववत् कार्य कर रहे हैं, इससे क्या यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि डॉक्टरजी ने हमें अन्ध-श्रद्धा नहीं सिखलाई है। मैं यह नहीं जानता कि डॉक्टरजी ने मुझे इस महान् पद पर क्यों नियुक्त किया? परन्तु मैं इतना अवश्य जानता हूं, कि मुझ पर उनका असीम प्रेम था। वह प्रेम जिसकी तुलना में पिता-पुत्र का अथवा गुरु-शिष्य का प्रेम भी फीका मालूम पड़ता है।

मैं यह बात भली भांति जानता हूं कि डॉक्टरजी के इस परमपवित्र आसन को स्पर्श करने की मुझमें योग्यता नहीं है; परन्तु डॉक्टरजी को अतीन्द्रिय दृष्टि थी, इसका मुझे दृढ़ विश्वास होने के कारण उनकी आत्मा मुझे प्रेरित कर मुझसे उपयुक्त सेवा करा लेगी, इसमें मुझे संदेह नहीं है। मैंने अपना तन, मन और आत्मा परमपूजनीय डॉक्टरजी के आधीन कर दिये हैं। वे उनका योग्य उपयोग कर लेंगे, यही मेरी दृढ़ श्रद्धा है।

ध्येय और धारणा का निश्चिय—

"हमारे इस संगठन के सम्बन्ध में अनेक लोग तरह तरह के प्रश्न पूछते रहते हैं और भविष्य में संघ किस मार्ग का अनुसरण करेगा, इसके सम्बन्ध में भी प्रश्न पूछे जाते हैं। वास्तव में संघ का ध्येय और कार्य निश्चित ही हैं। संघ की ध्येय दृष्टि अचल है। इसमें भविष्य में कभी भी अन्तर होने का कोई कारण नहीं हैं। संघ को किसी प्रचलित राजनीति या आन्दोलन में भाग नहीं लेना है। डॉक्टरजी के द्वारा प्रदत्त दृष्टि और निर्धारित किये हुए मार्ग के अनुसार ही हम लोगों ने अपना कार्य करते रहने का निश्चय किया है। डॉक्टरजी के पश्चात् संघ का क्या होगा? इस प्रकार की शंका कई लोगों के मन में उठती है। सच पूछो तो इस प्रश्न के उपस्थित होने का कोई कारण नहीं। यह सुनिश्चित है, कि किसी भी प्रकार की प्रतिकूल परिस्थिति में साहस के साथ अपना मार्ग निकालते हुए, सब प्रकार के संकटों को कुचलते हुए, तथा उनकी परवाह न करते हुए, संघ अपने विशिष्ट मार्ग से निरन्तर प्रगति पथ पर ही रहेगा। हम पर जितने आघात होंगे उतनी ही अधिक शक्ति से रबर की गेंद के समान उछल कर ऊपर ही उठेंगे। हमारी शक्ति अबाधित रूप से बढ़ती ही जावेगी और एक दिन वह सारे राष्ट्र को व्याप्त कर लेगी। हमको किसी का भी भय नहीं है। हम ऐसी प्रचण्ड और संगठित शक्ति निर्माण करेंगे, जिसके वर्तमान तेज से अत्याचारी दुर्जन भयभीत हो जायँ। एक ध्येय और एक ही मार्ग निश्चित कर, उसी से हम लोग बढ़ने वाले हैं, इसके सम्बन्ध में आपको पूरा विश्वास रहे।

हम तत्त्व के पुजारी हैं—

" नेता होने की आकांक्षा मुझे कभी न थी। किसी एक महान् तत्व का सेवक बनकर रहने की मेरी एक मात्र इच्छा थी। उस तत्व का दर्शन कराने वाला आदर्श पुरुष मुझे मिला, इससे मुझे पूरा संतोष है। जिसके हृदय में सेवा करने की लगन विद्यमान हो, वही संघ का सच्चा स्वयंसेवक अथवा अधिकारी हो सकता है। डॉक्टरजी ने मुझे सेवा करने का आदेश दिया हैं। यों तो प्रत्येक स्वयंसेवक राष्ट्रकार्य के हेतु सर्वस्व अर्पण करने की प्रतिज्ञा करके ही संघ में आता है। यह नैतिक जिम्मेवारी स्थान —महात्म्य के कारण मुझ पर और भी अधिक आ पड़ी है। मुझे इसका पूरा स्मरण है। इसके लिये मैं पूर्णरूपेण उद्यत भी हूं। मुझ में मेरा स्वयं का कुछ नहीं है। जो कुछ है सो केवल डॉक्टरजी की देन है। इसमें कोई संशय नहीं कि उनकी तपस्या के बल पर सब कुछ कार्य यथोचित ही होगा। प्रत्येक स्वयंसेवक के हृदय में जलने वाली ज्योति हम सबको अपना अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए आवश्यक प्रकाश प्रदान करेगी, इसका मुझे पूरा भरोसा है। डॉक्टरजी की मूल कल्पनाओं के अनुसार ही संघ आज भी प्राणपण से कार्य कर रहा है और आगे भी करता रहेगा। हमें आशा है कि अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति शीघ्र ही हम अपने सामने ही देखेंगे।"

इसके उपरांत सरसंघचालकजी ने स्वयं ही सब उपस्थित अतिथिओं का और विशेषत: भोंसले घराने के राजपुत्रों का आभार माना। श्रीमंत राजे बहादुर रघोजीराव भोंसले अस्वस्थ होने के कारण उपस्थित न रह सके, इसका खेद व्यक्त कर, राज–घराने को संघ और डॉक्टरजी के प्रति कितना ममत्व का भाव है, इसका उन्होंने आदरपूर्वक उल्लेख किया।

अंत में ध्वज प्रणाम होने के बाद, रिट्रीट का बिगुल हुआ और ध्वजावतरण किया गया। इस प्रकार यह गंभीर प्रसंग समाप्त हुआ।

अपने दिवंगत नेता की, आद्य सरसंघचालक की, स्मृति को श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए भारत की प्रमुख संघशाखाओं के जो सैकड़ों प्रतिनिधि

आए हुए थे, उनके, और उपस्थित स्वयंसेवकों के मन पर इस प्रसंग का अतिशय गंभीर परिणाम स्पष्टतया दिखाई दे रहा था। जिसे देखो, उसी के अन्तःकरण में डॉक्टरजी की स्मृति, ओंठों पर डॉक्टरजी का नाम, और आँखों के सामने डॉक्टरजी की प्रतिमा थी। अतिशय दुःख भरे हृदयों से और भारी पैरों से सब लोग अपने अपने निवासस्थानों को चले गये, परन्तु वापिस जाते समय सबके मन में केवल एक ही विचार था—भविष्य में केन्द्र के प्रभावशाली नेतृत्व में निष्ठापूर्वक निरन्तर काम करते हुए इस राष्ट्रीय संगठन को प्रचंड वेग से बढ़ाते हुए यशोमन्दिर में पहुंचाना। कारण यशोमन्दिर की प्राप्ति से ही अपने आद्य सरसंघचालकजी के स्मृति–मंदिर को खड़ा करने का श्रेय इस संगठन को मिल सकेगा।

★ ★ ★

४ : स्मृति - मंदिर

परमपूजनीय डॉक्टर साहब के विशाल एवं भव्योदात्त व्यक्तित्व का दर्शन आपको हो चुका है। जिस पावन स्थल पर संघ शिक्षा वर्ग के लिये सम्पूर्ण देश के कोने २ से आने वाले स्वयंसेवक प्रतिवर्ष साधना करते हैं और जिसे डॉक्टर साहब "तपोभूमि" के नाम से सम्बोधित करते थे, जिस पवित्र रेशमबाग संघस्थान पर उनके पार्थिव शरीर का अग्निसंस्कार सम्पन्न हुआ था, वहां पर समाधि के रूप में एक छोटा सा चबूतरा बना कर उस पर तुलसी का पौधा रोपित किया गया। यह सम्पूर्ण स्थल यदि स्वयंसेवकों के लिये "तीर्थस्थान" बन गया तो इस में कोई आश्चर्य नहीं।

प्रतिवर्ष संघ शिक्षा वर्ग में शिक्षा ग्रहण करने वाले स्वयंसेवक वहां पर अपनी मूक श्रद्धा व्यक्त करते। अनेक स्वयंसेवक तो केवल समाधि के दर्शन निमित्त ही नागपूर में आते और समाधि के सम्मुख खड़े होकर अपने भावपुष्प समर्पण कर नतमस्तक होते। वर्षा और आतप के निरन्तर आघात सहती हुई उस समाधि के सम्मुख खड़े होकर अनेक संकल्पों को कृति में उतारने का दृढ़ निश्चय करते समय यह विचार स्वाभाविक रूप से उठता कि इस स्थल पर कोई उपयुक्त स्मृतिकेन्द्र क्यों न बनाया जाय ? ईंट पत्थर जैसी चीजों से बनी कोई जड़ वास्तु डाक्टर साहब का स्मारक बन सकती है, यह बात न स्वयंसेवक कभी मानते थे और न आज ही मानते हैं। स्वयंसेवकों की यह दृढ़ धारणा है कि जिस संघवृक्ष को डाक्टर साहब ने अपने रक्त की एक–एक बूंद से सींचकर

बड़ा किया, उसे एक विशाल वट वृक्ष के रूप में संवर्धित करना ही डाक्टर साहब का सच्चा स्मारक हो सकता है। कारण यह भावनाओं का मूल्यमापन कैसे हो सकेगा ? फिरभी कार्यरूप में प्रगट होने वाला भाव वास्तुरूप में प्रगट हो, विशाल और उत्तुङ्ग व्यक्तित्व की, अंशत: ही क्यों न हो, कल्पना करना सम्भव हो सके तथा अन्तःकरण को समाधान और कार्य की प्रेरणा दे सके—इस हेतु डाक्टर साहब का कोई स्मृति मंदिर होना चाहिये, ऐसा अनेक स्वयंसेवक अनुभव करते थे। परमेश्वर के निराकार और निर्गुण स्वरूप की महत्ता प्रतिपादित करने वाले, तथा उसी कल्पना के अनुसार परमेश्वर का स्मरण करने वाले लोग भी तो उसके "सुन्दरं" स्वरूप को देखने की अभिलाषा रखते हैं। फिर, वास्तुरूप में डाक्टर साहब का स्मृतिमंदिर देखने की इच्छा को क्या अस्वाभाविक कहा जा सकेगा ?

इसी इच्छा के फलस्वरूप डाक्टर साहब के स्मृति मंदिर के निर्माण का विचार प्रारम्भ हुआ और सन् १९५७ में श्रीगुरुजी की अध्यक्षता में "डाक्टर हेडगेवार स्मारक समिति" की स्थापना हुई। श्री. बाबासाहेब घटाटे उसके उपाध्यक्ष बने और श्री. भैय्याजी दाणी कोषाध्यक्ष। परमपूजनीय डाक्टर साहब को प्रारम्भकाल से ही संघ कार्य में सहयोग देने वाले श्री. आप्पाजी जोशी, ठाणा के प्रसिद्ध विधि–विशारद श्री. वामनराव ओक आदि उसके सदस्य थे। हिन्दू समाज के लिये डाक्टर साहब द्वारा किये गये कार्य को इस प्रकार गौरवान्वित किया जाय कि वर्तमान और भविष्य में भी सभी क्षेत्रों में काम करने वालों को डाक्टर साहब की स्मृति से प्रेरणा मिल सके, यह उद्देश्य समिति ने अपने सम्मुख रखा। स्मृति मंदिर के निर्माण की योजना तीव्रगति से आगे बढ़ने लगी।

यह निश्चय किया गया कि मंदिर छोटा किन्तु टिकाऊ स्वरूप का और यथा सम्भव वह पत्थर का ही बनाया जाय। इसी समय यह भी निश्चित हुआ कि उस में डॉक्टर साहब का एक पुतला भी प्रस्थापित किया जाय। यह भी निर्णय किया गया कि मंदिर का दृश्यस्वरूप व रचना पूर्णत: भारतीय ढंग की हो। तथा उसके निर्माण में स्वदेशी वस्तुओं का ही प्रयोग किया जाय।

स्मृति–मन्दिर की पूरी योजना निश्चित होते ही भूमि के सम्बन्ध में उठने वाली कठिनाईयां भी हल कर ली गई। "डॉक्टर हेडगेवार स्मारक समिति" ने एक देशव्यापी अपील प्रकाशित कर डॉक्टर साहब के प्रति स्नेह व श्रद्धा रखने वालों से आर्थिक सहायता देने का अनुरोध किया। भारत के प्रत्येक सुदूरतम भागों से धन आना प्रारंभ हुआ और आवश्यक निधि एकत्रित हो गई। मन्दिर को शीघ्रातिशीघ्र तैयार करने का निश्चय करके स्मारक समिति काम में जुट गई। ९ अप्रैल सन् १९५९ को भूमि–पूजन विधिवत् सम्पन्न हुआ।

मन्दिर में किस प्रकार का पत्थर प्रयुक्त किया जाय यह विचार उठतेही भिन्न–भिन्न स्थानों से इतने प्रकार के पत्थरों के नमूने भेजे गये कि केन्द्रीय कार्यालय में मानो एक छोटीसी प्रदर्शनी ही लग गई। लगता था कि शिला प्रस्तरों के उस अखिल भारतीय सम्मेलन में मानो इस बात की स्पर्धा सी खड़ी हो गई कि स्मृति–मन्दिर में प्रयुक्त होने का अहोभाग्य किसे प्राप्त होता है। अन्ततः मन्दिर की नींव बनने का सौभाग्य मिला मराठवाडा के तेलवाडा नामक स्थान पर मिलने वाले काले पत्थर को। सम्पूर्ण मंदिर का लगभग एक तृतियांश भाग इसी पत्थर का बना है। मंदिर के शेष भाग में अधिकांशतः जोधपुर के "चीतर" पत्थर का प्रयोग किया गया। सान्ध्यकालीन सूर्यरश्मियों की सौम्य छटा बिखेरता हुआ इसे जोधपुरी पत्थर का रंग मंदिर के सौन्दर्य की वृद्धि कर रहा है। इसके अतिरिक्त जैसलमेर के पीले संगमर्मर, बडौदा के हरे और मैसूर के लाल रंग के तथा कांगडा के विविध पत्थरो को भी मंदिर के अंगभूत होने का श्रेय प्राप्त हुआ हैं।

रेशमबाग की सीमा में प्रवेश करने के पूर्व ही दूर से मंदिर का कलश दृष्टिगत होने लगता है। किंचित् प्रस्फुटित कमल दल के उपर घट और उसके उपर विराजित–कलश की वैशिष्टचपूर्ण रचनावाला यह शिरोभाग प्रथम दृष्टि में ही दर्शकों का मन मोह लेता है। मंदिर की पूरी उंचाई पैतालीस फीट होने के कारण दूर से ही उसकी भव्यता का आभास मिलने लगता है। जैसे जैसे उसके समीप पहुंचते हैं वैसे वैसे मंदिर में स्थित पुतले और उसके नीचे गर्भगृह की ओर ध्यान आकृष्ट होता है।

मंदिर का गर्भगृह पूर्णरूप से संगमर्मर का बना है और स्थान स्थान पर उसमे पच्चीकारी की हुई है। उसके मध्य भाग में डॉक्टर साहब की समाधि और उसके चारों ओर संगमर्मर का नक्कशीदार कठडा, प्रत्यक्ष समाधि पर ग्रेनाइट की एक अखण्ड रक्तवर्ण शिला के मध्य भाग में संगमर्मर का ॐ कार जड़ा हुआ है। आदिपुरुष की प्रथम ध्वनि का वह प्रतीक डॉक्टर साहब के सर्वंकश और महान व्यक्तित्व का परिचय देता है। समाधि के सम्मुख दीपक के मन्द प्रकाश में वहां का वातावरण अत्यन्त आल्हादकारक हो उठता है। वहां के पावित्र्य और सौन्दर्य का मन पर विलक्षण प्रभाव पड़ता है। गर्भगृह में प्रवेश करने वाला प्रत्येक व्यक्ति पावन होकर ही बाहर निकलता है।

मंदिर के ऊपर चढ़ने के लिये दोनों ओर से सीढ़ियां बनी हैं। आठ दस सीढ़ी ऊपर चढ़ने के बाद डाक्टर साहब की पूर्वाभिमुख मूर्ति का दर्शन होता है। जिस वेदी पर उनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है वह ठीक समाधि के ऊपर स्थित है। वेदी के तीन ओर आव्हान मुद्रा में सिंह की मूर्तियां बैठाई गई हैं। पुतले के पीछे की दीवार पर संगमर्मर जड़ा गया है। शेष तीन ओर से, निकट या दूर, कहीं से भी प्रतिमा का दर्शन किया जा सकता है।

मंदिर के मध्यभाग में स्थित डाक्टर साहब की पूर्णाकृति देहमापी प्रतिमा पंचरस धातु मे बनाई गई है और वह अत्यन्त सजीव लगती है। मर्म-भेदी दृष्टि, उँची टोपी, उन्नत ललाट, सिधी नासिका, छड़ी एवं घड़ी आदि विशेषताओं से युक्त उस मूर्ति को देखते ही दर्शक अवाक् सा रह जाता है। नेत्रों के नीरांजन से उस प्रतिमा की आरती उतारते समय मन में विचारों की एक आंधी सी उठती है और उस महाभाग के बीते जीवन की बहुविध घटनाओं की याद आ जाती हैं। डाक्टर साहब के निकटवर्ती लोग तो गद्गद् होकर मूर्ति को देखते ही रह जाते हैं। भूतकाल की कितनी ही स्मृतियां ताजी होकर जब उनकी आंखों के चारों ओर नाचने लगती हैं तब सहसा दो बूंद आंसू अपने आप टपक पड़ते हैं। छोटे बड़े स्वयंसेवक वहां नतमस्तक होकर भावी कार्यार्थ संकल्प करते हैं।

मंदिर के निर्माण में कितने ही लोगों ने अथक परिश्रम किया है। पूना के सुप्रसिद्ध वास्तुविशारद श्री. बालासाहेब दीक्षित एवं शिल्प विशारद श्री. उद्धवराव आपटे का उसमें बहुत बड़ा योगदान है। बम्बई के प्रसिद्ध शिल्पी श्री नानाभाई गोरेगांवकर ने तो मूर्ति के निर्माण में अपना सम्पूर्ण कौशल्य ही दांव पर लगा दिया। उसकी सजीवता शिल्पकार के कौशल्य की स्वयमेव साक्षी दे रही है।

नागपूर का एक अप्रतिम शिल्प के रूप में इस स्मृति–मन्दिर का उल्लेख करना उचित होगा। अगणित स्वयंसेवकों की इच्छा, शुभचिन्तकों की उत्कट भावना एवं अनेक कलाकारों के कौशल्य को साकार करने वाला मांगल्य का यह श्रेष्ठ आविष्कार आज रेशमबाग की तपोभूमि पर विराजमान है। मन्दिर का निर्माण कार्य सन् १९६२ के जनवरी मास में मकर-संक्रान्ति के लगभग पूर्ण हुआ।

उद्घाटन

स्मृति–मंदिर के निर्माण पूर्ण होने का समाचार कानोकान सम्पूर्ण देश भर में अपने आप ही फैल गया। सभी स्थानों से जिज्ञासा प्रकट होने लगी की मंदिर का उद्घाटन कब होने वाला है। सभी स्वयंसेवकों की यह स्वाभाविक इच्छा थी कि इस निमित्त नागपुर में जाकर संघ की गंगोत्री का दर्शन करें। उस अभूतपूर्व समारंभ को देखने की इच्छा अपनी चरम सीमा पर पहुँची और प्रत्येक उस उद्घाटन की तिथि की आतुरतापूर्वक राह देखने लगा।

शक सं० १८८४ का वर्ष प्रतिपदा दिवस दि. ५ अप्रैल, १९६२ उद्घाटन के लिये निश्चित किया गया। विजय की ध्वजा फहराने वाले शालिवाहन का स्मरण करा देने वाला संवत्सर का प्रथम दिवस परमपूजनीय डाक्टर साहब का भी जन्म दिन है। इस कारण वर्ष प्रतिपदा के दिन उद्घाटन का आयोजन विशेष औचित्यपूर्ण था। विद्यार्थियों का परीक्षाका समय होते हुये भी वर्ष प्रतिपदा का महत्व ध्यांन में रखते हुये इसी दिन स्मृति–मंदिर का उद्घाटन करने का निश्चय किया गया।

इस कार्यक्रम के निमित्त आठ दस हजार स्वयंसेवक एकत्रित होंगे यह अनुमान कर व्यवस्था की योजना की गई। इतनी बड़ी संख्या में आने वाले स्वयंसेवकों के आवास और भोजन की व्यवस्था का दायित्व स्थानिय स्वयंसेवकों ने संभाला और नागपुर के आतिथ्यशील नागरिकों ने उत्साह-पूर्वक उनका साथ दिया। सभी आगन्तुकों की व्यवस्था विभिन्न घरों में करने का निश्चय किया गया।

नागपुर डाक्टर साहब की कर्मभूमि रही है। नागपुर के नागरिकों ने डाक्टर साहब के विविध रूपों का दर्शन किया था। आज उस बात को २२ वर्ष बीत चूके थे। अब स्मृति–मंदिर के रूप में डाक्टर साहब की स्मृति साकार होगी और भारत के कोने कोने से आने वाले स्वयंसेवक अतिथियों के स्वागत का सौभाग्य मिलेगा, इस बात का उन्हें अत्यधिक आनन्द था। उद्घाटन के एक दो दिन पहिले से ही नागपुर पहुंचने वाली प्रत्येक गाड़ी से सैंकड़ों स्वयंसेवक स्टेशन पर आ रहे थे। उन्हें निश्चित स्थान पर त्वरित पहुंचाने की व्यवस्था थी। निवास व भोजन की व्यवस्था इतनी पूर्ण थी कि उसमें कोई कोर कसर निकालना संभव नही था।

विविध भाषा, वेषभूषा, रंगरूप, खानपान, रीति रिवाज के हजारों स्वयंसेवक ४ अप्रैल से ही छोटे छोटे गुटों में सम्पूर्ण नागपूर में घूमते दिखाई देने लगे। परमपूजनीय डॉक्टरसाहब के सहवास से पावन हुई प्रत्येक वस्तु का दर्शन करना, पुराने कार्यकर्त्ताओं से मिलना, उनके संस्मरण सुनना, नागपुर की संघशाखायें, केन्द्रीय कार्यालय तथा अधिकारी गण के घर आदि देखना, सर्वसाधारण स्वयंसेवक इन्ही कार्यक्रमों में व्यस्त थे। स्वयंसेवकों की उपस्थिति के कारण नगर में एक विशेष प्रकार का चैतन्य व्याप्त था। एक ओर केन्द्र कार्यालय में प्रतिनिधि सभा की बैठक हो रही थी तो उधर दुसरी ओर केन्द्र संघस्थान पर उद्घाटन की व्यापक तैयारियां चल रही थीं।

चतुर्दिक आनन्द बिखेरती हुई शक संवत् १८८४ की वर्ष प्रतिपदा उपस्थित हुई। इस दिन डॉक्टर साहब का ७२ वा जन्म दिवस था। केन्द्रीय कार्यालय पर ध्वज फहराया गया। शहनाई के सुमधुर स्वर से

रेशमबाग गूंज उठा। समाधि पर ओऽम्कारयुक्त शिला स्थापित करने का कार्यक्रम प्रातःकाल सम्पन्न हुआ। परमपूजनीय श्रीगुरुजी के द्वारा शास्त्रोक्त पद्धती से वह शिला प्रस्थापित की गई। वेदशास्त्रसम्पन्न श्री. भय्याजी आर्वीकर ने पौरोहित्य किया। वेद की सभी शाखाओं के ब्राह्मणों का वेदपाठ चल रहा था। इस अवसर पर अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के अतिरिक्त अनेक स्वयंसेवक व नागरिक उपस्थित थे। डॉक्टर साहब के अनेक कुटुम्बीय जन सजल नेत्रों से यह कार्यक्रम देख रहे थे। इस अवसर पर उनके अन्तःकरणों में कौन सी भावनाओं का तूफान उठा होगा, इसका वर्णन करना असम्भव है।

शिला प्रस्थापित करने के उपरान्त श्रीगुरुजी ने डॉक्टर साहब की प्रतिमा को पुष्पहार पहनाया। वेदपाठी ब्राह्मणों को दक्षिणा दी गई। प्रमुख कार्यकर्त्ताओं का परिचय कराया गया। जिनके परिश्रम से यह मंदिर तैयार हो पाया था, उन में से कुछ प्रमुख लोगों को कुछ भेंट देकर श्रीफल से उनका सत्कार किया गया। अन्त में प्रसाद वितरण किया गया। यह कार्यक्रम लगभग एक घण्टे तक चलता रहा। इस अवसर पर स्मृति–मंदिर में उपस्थित एक वृद्धा का उल्लेख करना आवश्यक है। वह थीं श्रीमती ताईजी—श्रीगुरुजी की मातुश्री। वर्षों से शैयाग्रस्त होने पर भी वे वहां आग्रहपूर्वक आयी थी और अत्यधिक प्रसन्न दिखाई दे रही थी। डॉक्टर साहब की समाधि एवं मूर्ति देखकर उनके मन में जो भावनायें उठी होगी उनकी अभिव्यक्ति क्या शब्दों के द्वारा संभव है? डॉक्टर साहब, गुरुजी और ताईजी को निकट से जानने वाले लोग ही ताईजी की इस समय की मनःस्थिति का अंदाज कर सकते हैं।

उद्‌घाटन समारंभ सायंकाल को होने के कारण बीच का समय सभी ने परस्पर मिलने जुलने, परिचय करने और स्मृति–मन्दिर का निरीक्षण करने मे बिताया। साथही आसपास से बहुत बड़ी संख्या मे स्वयंसेवक का भिन्न भिन्न साधनों से आते रहना जारी था। कुछ तो पैदल ही आये थे।

दोपहर के तीन बजे से नागपुर के सभी मार्ग केन्द्र संघस्थान की ओर बहते नजर आने लगे। स्वयंसेवक एवं नागरिकों की लम्बी कतारे

रेशमबाग की ओर बढ़ रही थी। उनके आनन्द को आज ज्वार आया था। फिर भी अनुशासन और मर्यादा देखते ही बनती थी। नागपूर आने का अनेकों के लिये यह प्रथम ही अवसर था और उन मे भी डॉक्टर साहब का प्रत्यक्ष दर्शन किये हुये लोगों की संख्या तो अंगुलियों पर गिनने लायक ही थी। इस कारण, स्मृति–मन्दिर के दर्शन से आज डॉक्टर साहब के प्रत्यक्ष सान्निध्य की अनूभूति होना अस्वाभाविक नहीं था। डॉक्टर साहब के अन्यान्य मित्र भिन्न भिन्न संस्मरण सुनाते हुये स्मृति–मन्दिर के चतुर्दिक सतत डॉक्टर साहब के गुण सुमनों का सुगंध बिखेर रहे थे। सन् १९४० में डॉक्टर साहब ने संघशिक्षा वर्ग में अपने अंतिम भाषण में ये उद्‌गार प्रकट किये थे कि "मैं अपनी आंखों के सम्मुख हिन्दू राष्ट्र का छोटा सा स्वरूप देख रहा हूं।" आज उसके ठीक २२ वर्षों के बाद उनकी इस कल्पना को चरितार्थ करते हुए हजारों स्वयंसेवक उद्‌घाटन के निमित्त स्मृति–मन्दिर के सम्मुख उपस्थित थे। जो लाखों स्वयंसेवक प्रत्यक्ष रूप से इस कार्यक्रम में उपस्थित नहीं हो सके थे उन्होंने अपने अपने स्थान पर ही अपनी पुष्पाञ्जलि डाक्टर साहब को समर्पित की होगी।

उद्‌घाटन के कार्यक्रम की व्यवस्था पहले से ही पूर्ण थी। पचास हजार जन समुदाय को एक साथ बिठाने की व्यवस्था कर गणवेशधारी प्रबन्धक स्थान स्थान पर मार्गदर्शन के लिये खड़े थे। स्मृति–मंदिर के सम्मुख ध्वजस्तम्भ और उसके सामने एक भव्य मंच बनाया गया था। माताओं के बैठने का अलग प्रबन्ध था। मंदिर के एक ओर विविध वाद्ययंत्रों से सुसज्ज घोष विभाग शान के साथ खड़ा था। राग–रागिणियों पर आधारित उसका अभिनव सैनिकी–वादन सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। चारो ओर लगाये सर्चलाइट के प्रकाश मे स्मृति–मंदिर जगमगा रहा था। नियत समय के पूर्व ही आमंत्रित स्त्री–पुरुष नागरिक तथा स्वयंसेवक अपने निश्चित स्थान पर आसीन हो चुके थे।

ठीक साढ़े छः बजे परमपूजनीय श्रीगुरुजी संघस्थान पर उपस्थित हुये। घोष के निनाद के साथ उन्हें सरसंघचालक प्रणाम दिया गया।

तदनन्तर उन्होंने समाधि पर और प्रतिमा को पुष्पहार समर्पित करते हुये गंधाक्षत चारों ओर बिखेर कर परमपूजनीय डॉक्टर हेडगेवारजी के स्मृति–मंदिर के उद्घाटन की घोषणा की। उद्घाटन की यह पद्धति अभिनव और अर्थपूर्ण थी। पर्दा उठाकर अथवा फीता काटकर उद्घाटन करने की पद्धति सर्वत्र प्रचलित है। पर यहां कामकोटि पीठस्थ श्रीमद् शंकराचार्यजी के द्वारा विशेषरूप से प्रेषित मंगलाक्षत को बिखेरकर आद्य सरसंघचालकजी के स्मृति–मंदिर का उद्घाटन किया गया। इसे मणिकांचन संयोग ही कहना चाहिये। उद्घाटन के अनन्तर आद्य सर-संघचालक प्रणाम दिया गया। राजासाहब श्री. फत्तेसिंहराव भोंसले ने प्रतिमा को पुष्पहार समर्पित कर नवनिर्वाचित सरकार्यवाह श्री. भय्याजी दाणी और नागपुर संघचालक श्री. बाबासाहेब घटाटे को कुंकुम तिलक लगाया। तदनन्तर इन सबके साथ श्रीगुरुजी मंच पर उपस्थित हुये।

इस अवसर पर भगवान अंशुमाली स्मृति–मंदिर को अभिवादन कर अस्ताचल गामी हो रहे थे। उनकी सुनहरी किरणें स्मृति–मंदिर पर अलौकिक आभा बिखेर रही थी। ऐसे वातावरण में घोष पर ध्वजारोहण का मंत्र गूंजने लगा—

ॐ नमोस्तु ते ध्वजाय
सकल भूवन – जन हिताय
विभवसहित विमलचरित
बोधकाय, मंगलाय ते सततम् ॥

रागेश्वरी की सुमधुर ध्वनि से मंत्रमुग्ध वातावरण में सुवर्णगैरिक भगवद्-ध्वज उंचे आसमान में फहराने लगा। ध्वज प्रमाण हुआ और ५०–६० सहस्रो कण्ठो से प्रार्थना निनादित हो उठी। तदनन्तर वेद ऋचाओं के पाठ के साथ अगला कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। सुप्रसिद्ध संगीत निर्देशक श्री. सुधीर फड़के ने " लो श्रद्धांजलि " यह गीत गाया। उनकी विशेष आकर्षक शैली से गीत की प्रत्येक पंक्ति के साथ मानो डाक्टर साहब के जीवन की एक एक घटना सजीव हो उठी। इस गीत के अनन्तर श्रीगुरुजी भाषण के लिये

खड़े हुये। "वास्तविक रूप से कामकोटि पीठ के अधिपति श्रीमद्-शंकराचार्यजी के द्वारा ही स्मृति-मंदिर का उद्घाटन होने वाला था। पर कुछ अपरिहार्य कारणों से वे अपना स्थान छोड़ने में असमर्थ हो गये। इस कारण उन्होने मंगलाक्षत भेजकर आशीर्वादात्मक संदेश भेजा है" यह बताते हुये श्रीगुरुजी ने उनका संदेश पढ़कर सुनाया। श्रीमद्शंकराचार्यजी ने निम्नलिखित संदेश भेजा था।

"भारतदेशे सनातन-संस्कृति-रक्षणार्थं राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ नामानं समाजं संस्थाप्य महान्तमुपकारम् आरचितवतः श्रीकेशव-बलिराम-हेडगेवार-महोदयस्य संस्मारकत्वेन नागपुरे तत्संघनिर्वाहकैः श्रीगोळवलकर-महोदयादिभिः एकं मंदिरं निर्माय तस्योद्घाटनमहोत्सवः अचिरात् संपत्स्यत इति विदित्वा भृशं सन्तुष्यामः। एतन्मन्दिरं श्रीहेडगेवार-महोदयस्य स्वधर्माचरणविशिष्टं त्यागमयं राष्ट्रसमुन्नत्यर्थमर्पित जीवनं संस्मारयत् सर्वेषामपि भारतीयानां तन्मार्गानुसरणे प्रदीपायतां इति।"

इस सन्देश का हिन्दी अनुवाद भी श्रीगुरुजी ने सुनाया। संकेश्वर पीठ के श्रीशंकराचार्य, विशिष्टाद्वैत मत के आचार्य श्रीराघवाचार्यजी, वाराणसी के श्रीराजराजेश्वर-शास्त्री द्रविड, लोकनायक बापूजी अणे, स्वातंत्र्यवीर तात्याराव सावरकर और महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री. यशवन्तराव चव्हाण के संदेश भी पढ़ कर सुनाये गये। तदनन्तर स्मृति-मंदिर के निर्माण का इतिहास बताते हुये श्रीगुरुजी ने एक घण्टे तक धाराप्रवाह भाषण दिया।

परमपूजनीय श्रीगुरुजी का भाषण

"परीक्षा के कारण आज अनेक स्वयंसेवक इस कार्यक्रम में यहां उपस्थित नहीं हो सके, अन्यथा यहां उपस्थित स्वयंसेवकों की संख्या से कम से कम ढ़ाई गुना स्वयंसेवक अवश्य ही उपस्थित हुये होते, परन्तु वर्ष प्रतिपदा का दिन पूजनीय डॉक्टर साहब का जन्मदिन होने के कारण इसी दिन स्मृति-मंदिर के उद्घाटन का मुहूर्त निश्चित किया गया। स्मृति-मंदिर के निर्माण और उद्घाटन का यह अर्थ कदापि नही कि हम व्यक्तिपूजक हैं।

संघकार्य में संघ के जन्मदाता सर्वाधिक आदरणीय व्यक्ति थे पर उनके भी नाम का जयजयकार हमने कभी नहीं किया। जयजयकार करनी ही हो तो राष्ट्र की करें, भगवान की करें, मातृभूमि की करें, व्यक्ति की नहीं। ऐसा होते हुये भी कुछ श्रेष्ठ व्यक्तियों का जीवन अलौकिक रहता है। उनका जीवन केवल अपनी देह तक ही सीमित न रहकर तत्व से एकरूप हो जाता है। डॉक्टर साहब का जीवन उसी प्रकार का था। कितने ही दिनों से उनका और शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था ऐसा कहना भी अनुचित न होगा। रोगग्रस्त होने के बाद भी उग्र अविरत परिश्रम और प्रवास करना इस बात का प्रमाण है। इतने रुग्ण रहने पर भी वे प्रवास कैसे कर लेते थे इसका लोगों को अनेक बार आश्चर्य होता। डॉक्टर साहब का जीवन तत्व में परिवर्तित हो चुका था। निश्चित ध्येय के लिये शरीर, मन व बुद्धि, सब कुछ समर्पित कर देने के कारण शरीर तो उस तत्व का वाहक मात्र रह गया था। इसी प्रकार तत्वरूप हुये पार्थिव शरीर का चिन्तन, तत्वचिंतन के ही समान होता है।

"शुष्क तत्वचिन्तन से मन इतस्ततः भटकने लगता है, बुद्धि कई बार अकर्मण्य बन जाती है। किन्तु किसी स्फूर्तिदायक अवलम्ब के प्राप्त होते ही तत्वचिन्तन सुलभ हो जाता है। किसी आधार के अभाव में व्यापक और महान् शक्ति की अनुभूति यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। काली अथवा दुर्गा का स्वरूप आंखों के सम्मुख उपस्थित होते ही किसी प्रलयंकारी शक्ति का थोड़ा अनुभव होता ही है। हमने डॉक्टर साहब का कार्य का स्वीकार किया है। उस तत्व को हृदयंगम कर तदनुरूप अपने जीवन को ढालने के लिये उन्ही के समान भावनाओं से ओतप्रोत अपने हृदय की स्थिति बनाना आवश्यक है। शुष्क शब्द उसके लिये सहायक नहीं बन पाते। अतः चिन्तन के लिये अवलम्बन की आवश्यकता पड़ती है।

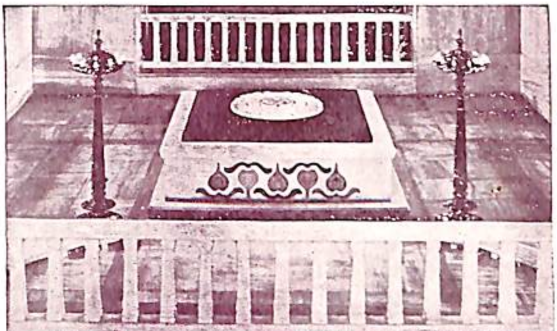
"डॉक्टर साहब ने हमें जो कार्य बताया है उसके लिये मन की कौन सी अवस्था अपेक्षित है? उन्होंने हमें बताया है कि विशाल हिन्दू समाज का संगठन करना चाहिये। अपने समाज में व्यक्तिगत बुद्धिमत्ता अथवा कर्तृत्व की तो कमी नही, पर सामाजिक रूप में वह बुद्धिमत्ता और कर्तृत्व

अनुभव नहीं होता। इसी कारण संसार में हमारा जीवन श्रेष्ठ, सुरक्षित अथवा सुखी नहीं हो सका। प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धिमत्ता, कर्तृत्वशक्ति अथवा भावनायें भिन्न भिन्न मार्गों से कार्य करती हैं। जिस समाज में चार लोग भी साथ नहीं चल सकते ऐसे अपने स्वार्थ में निमग्न समाज का जीवन कभी भी समृद्ध नही हो सकता। उसे निकृष्ट, पराभूत और पारतंत्र्य में जकड़ा हुआ जीवन बिताना पड़ता है। ऐसे समाज में व्यक्ति व्यक्ति की बुद्धि और कर्मशक्ति में सामंजस्य नहीं रहता। संगठित जीवन से ही यह सामंजस्य उत्पन्न होता है।

"इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि हमें किसी एक विशिष्ट सांचे का ही जीवन निर्माण करना है। आजकल इस प्रकार एक ही सांचे में व्यक्ति को जकड़ने का प्रयोग विदेशों में चल रहा है। जिस देश में भाषा कृति व विचारों को एक निश्चित सांचे में जखड़ कर, किसी एक व्यक्ति के ही मार्गदर्शन में सबको चलाने का प्रयास किया गया है वहां पर तो एक प्रकार का दहशत का वातावरण रहता है। बड़े बड़े देशों में 'ब्रेन वाशिंग' के नाम पर मानो सभी सद्गुणों को निकाल फेंकने का प्रयास हो रहा है। अपने देश में भी उसका अनुकरण करने की चेष्टा हो रही है। किसी एक ही ढांचे में सबके जीवन को जकड़ डालना, हमारी संस्कृति को अभिप्रेत नहीं। इस प्रकार का सांचेबंद जीवन हमारी परम्परा में निकृष्ट और त्याज्य माना गया है। यदि सभी लोगों के वर्ण, नाक, कान एक जैसे ही हो जाय– उस में कोई भी भिन्नता न रह जाय तो एक दूसरे को देखकर अन्तःकरण ऊबने लगेगा। प्रत्येक की प्रतिभा अलग अलग हो सकती है। विविधता देखकर मन प्रसन्न होता है। विविधता से जीवन में सरलता उत्पन्न होती है।

"उदात्त लक्ष्य और ध्येय की सिद्धि के लिये स्नेहसंबद्धता आवश्यक होती है। अपनी अपनी बुद्धि और क्षमता के अनुसार समाज के संवर्धन में मग्न होने की प्रवृत्ति निर्माण करने को ही सामाजिक अर्थ में भावभीनी अवस्था निर्माण करना कहा जाता है। यह भावभीनी अवस्था निर्माण होते ही सामाजिक समृद्धि के लिये आवश्यक समाज का चैतन्यमय संगठित





रूप निखर उठता है। सुसंठित और चैतन्ययुक्त जीवन में ही सुख और समृद्धि फलती फूलती है। यह भावभीनी अवस्था शब्दावडम्बर से प्राप्त नहीं हो सकती। समाज का प्रत्येक व्यक्ति मेरा अभिन्न-हृदय है, मेरे ही शरीर का अंश है, मेरे समान ही वह भी इस मातृभूमि का पुत्र है, इसी मातृभूमि के रजःकण से उसका भी शरीर बना हुआ है; सहस्त्रावधि वर्षों से अखण्ड रूपसे चलने वाली जिस संस्कार परम्परा में मेरा हृदय ढला है, उसी संस्कार परम्परा में उसका भी हृदय ढला है; हमारे सुख-दुःख के अनुभव समान है, जो कुछ थोड़ी सी भिन्नता दिखाई देती है उससे एकात्मता में किंचित् भी बाधा उत्पन्न होना असम्भव है, इस सत्य की अनुभूति प्रत्येक को हो सके, इसके लिये कार्य करने की प्रेरणा पूजनीय डॉक्टर साहब के जीवन से मिलती है।

"सातों रंगों के सम्मिश्रण से जैसे शुभ्र प्रकाश निर्माण होता है वैसे ही खानपान, भाषा, वेषभूषा आदि की विविधता से हमारा जीवन एकात्मक रूपसे प्रकाशित हुआ है। इसी का नाम भावात्मक ऐक्य है। यह ऐक्य, सौदेबाजी से निर्माण नहीं होता। भावात्मक एकता की आधार शिला है अन्तःकरण में समान भावनाओं की विद्यमानता। गहन चिन्तन और निकट सम्पर्क से ही इस भावना की अनुभूति सम्भव है। सबको यह अनुभूति हो सके इसी दृष्टि से संघकार्य की रचना की गई है। विविधता में एकता का दर्शन कराने वाली संघ की कार्यप्रणाली बेजोड़ है। दैनिक शाखा के कार्यक्रम में व्यक्ति रम जाता है और उसके अन्तःकरण में एकता के भाव जाग उठते हैं।

"आज देश में अनेक कार्य चल रहे हैं। दादाभाई नौरोजी, महात्मा गांधी और पंडित नेहरू जैसे जगद्विख्यात लोगों ने जिस संस्था को सींचा, उस में पंथभेद और भाषाभेद के आधार पर गुटबंदियां दिखाई देती हैं। इस बड़ी संस्था का अनुसरण करने वाले अन्य दलों में भी गुटबंदी का दुर्गुण चरमसीमा तक पहुँचा हुआ है। ऐसा लगता है मानो इन संस्थाओं में दुर्गुण सम्पन्न होने की होड़ सी लगी है। बड़े बड़े नेता भावात्मक

एकता निर्माण करने के लिये योजनायें बना रहे हैं पर विच्छिन्नता की शक्ति ताण्डव नृत्य कर रही है। एक प्रकार से विभेदकारी प्रवृत्तियों की सहायता से, हारी हुई लढ़ाई को वे जीतने का प्रयास कर रहे हैं।

" डॉ. साहब के संघ में रहने वाले लोगों को यह कभी भी अनुभव नहीं होता था कि डॉक्टर साहब कोई असामान्य पुरुष हैं। किन्तु संघ की कार्य पद्धति के निर्माण में उनका असामान्यत्व प्रकट हुआ। अपढ़ से लेकर बड़े बड़े विद्वान तक सब एकत्रित होंगे परन्तु हम भिन्न हैं यह किसी को स्मरण भी न होगा ऐसी यह कार्यपद्धति है। खेलकूद करना, शारीरिक व्यायाम करना, गीत गाना, परस्पर एक दूसरे की सहायता करना, एक दूसरे के सुख दुःख की चिन्ता करना, यही है दैनिक कार्यक्रमों का स्वरूप। इस अत्यन्त सरल एवं सुगम दैनिक कार्य–पद्धति से शरीर और मन में एकतानता निर्माण होती है। विचारों में सामंजस्य पैदा होता है। इस में से राष्ट्रभक्ति और मातृभक्ति का आविर्भाव होता है और वह सम्पूर्ण समाज में व्याप्त होती है। यह कार्य अत्यन्त कठिन है। किन्तु डॉक्टर साहब द्वारा निर्मित कार्यपद्धति उतनी ही सुगम भी है। इसी में उनकी अलौकिकता प्रगट हुई है। प्राचीनकाल में भगवान् श्रीकृष्ण ने मानव मात्र के लिए सरलतापूर्वक आचरण करने योग्य ईश्वर साक्षात्कार का मार्ग दिखाया था। अर्वाचीनकाल में परमेश्वर का साक्षात्कार करने का सुगम और सरल मार्ग भगवान् श्रीरामकृष्ण परमहंस ने दिखलाया। और आज के युग में राष्ट्रस्वरूप परमेश्वर के साथ तादात्म्य उत्पन्न करने का अति सरल मार्ग पूजनीय डॉक्टर साहब ने दिखलाया है। यह मार्ग सरल होते हुये भी राष्ट्र को अमरत्व प्रदान करने वाला है। डॉ. साहब की अलौकिकता भी इसी में निहित है कि उनके द्वारा निर्मित कार्य राष्ट्र को अमरता प्रदान करने वाला है। लोगों को उनका जीवन अति सामान्य सा लगता था। आज भी सम्पूर्ण समाज को उनकी अलौकिकता का ज्ञान नहीं है पर कालान्तर में सम्पूर्ण जग को उनकी अलौकिकता का अनुभव होगा इस में तिलमात्र भी संदेह नहीं।

"आजकल पाश्चिमात्य जीवन पद्धति का अनुसरण करने की प्रवृत्ति होने के कारण यह धारणा बलवती होती जा रही है कि सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं के व्यक्तिगत जीवन की ओर नहीं देखना चाहिये। परन्तु यह प्रवृत्ति अपनी परम्परा के अनुकूल नहीं। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में भेद मानने की हमारी परम्परा नहीं है। कथनी और करनी में एकरूपता को ही हमारी परम्परा में वन्दनीय माना गया है। जो स्वयं चरित्रभ्रष्ट है उसके उपदेश का समाज पर किंचित् भी परिणाम नहीं हो सकता। अपने नेता आज कहते हैं कि "क्राइसिस आफ कैरेक्टर" चारित्र्य की समस्या पैदा हो गई है। डॉक्टर साहब ने कोरा उपदेश कभी भी नहीं किया। राष्ट्रीय जीवन में उन्होंने शील-सम्पन्नता का, चारित्र्य सम्पन्नता का, राष्ट्र की निस्वार्थ सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया है। राष्ट्र साक्षात् परमेश्वरस्वरुप है। अपनी भारत माँ साक्षात् जगज्जननी है। क्या भ्रष्ट देह से उसकी पूजा हो सकेगी? जगज्जननी स्वरूप मातृभूमि का पूजन करने के लिये जीवन की अन्तर्बाह्य शुचिता आवश्यक है। "मैं इस राष्ट्र देव का पुजारी हूं" इस प्रकार का अहर्निश चिन्तन करते हुये दुर्गणों को त्यागकर अपना जीवन पवित्र बनाना चाहिये। हम लोगों के सम्मुख पूजनीय डॉक्टर साहब के अन्तर्बाह्य विशुद्ध आचरण का आदर्श है। वे कामिनी और कांचन दोनों के ही प्रभाव से मुक्त रहे। सत्यप्रियता, ईमानदारी, विशुद्ध चारित्र्य, दृढ़ता इत्यादि गुणों से युक्त निरलस राष्ट्रसेवा का प्रत्यक्ष उदाहरण आंखों के सामने होने के कारण हजारों स्वयंसेवकों को घर द्वार छोड़कर, "कैरियर" का मोह छोड़कर राष्ट्रसेवा के लिये सर्वस्वार्पण करने की प्रेरणा उनसे मिली। डॉक्टर साहब का जीवन, सर्वस्वार्पित राष्ट्रसेवा का मूर्तिमंत प्रतीक था। सभी शत्रुओं पर उन्होंने विजय प्राप्त की। अहंकार रूपी शत्रु के सम्मुख तो बड़े बड़े तपस्वी भी कांप उठते हैं पर डॉक्टर साहब ने उस शत्रु पर भी विजय पाई। सर्वश्रेष्ठ गुणों का सम्मुच्चय प्राप्त होने पर भी उनके जीवन में अहंकार का कहीं लेश भी न था। गत डेढ़ दो सौ वर्षों में देश की इतनी स्वार्थ रहित सेवा करने वाला निरहंकार व्यक्ति हुआ ही नहीं यह कहना किंचित भी अतिशयोक्ति न होगी।

" डॉक्टर साहब का जीवन तत्स्वरूप होकर अत्यन्त भव्य, स्फूर्तिप्रद और राष्ट्र कार्य से समरस हो गया था। मानो अनेक गुणों का श्रेष्ठत्व उस में समाविष्ट हो गया हो। इस स्मृति–मंदिर का निर्माण इसी लिये किया गया है कि उनके उस श्रेष्ठतम जीवन का कुछ अंश हम भी प्राप्त कर सकें; उनके ही समान निरलस राष्ट्रभक्ति की भावना से ओतप्रोत अन्तःकरण हमें भी प्राप्त हो; उस जीवन के स्मरण से राष्ट्र का अमूर्त रूप साकार हो उठे। उनका जीवन पीढ़ी दरपीढ़ी अहर्निश मार्ग-दर्शन करता रहे। राष्ट्र के उपर आये हुये सब संकट दूर कर, एक चिरंजीव, अतीव सुखी, समृद्ध, सन्मान्य व श्रेष्ट्र राष्ट्रजीवन निर्माण करने का सामर्थ्य प्राप्ते हो सके, इस हेतु यह स्मृति-मंदिर प्रेरणा का चिरन्तन स्रोत बनेगा इस में तिलमात्र भी सन्देह नहीं।"

श्रीगुरुजी के इस भाषण के उपरान्त ध्वजप्रमाण व ध्वजावतरण हुआ और स्मृति–मंदिर के उद्‌घाटन का यह कार्यक्रम समाप्त हुआ। रात में वरुणदेव को स्मृति–मंदिर का अभिषेक करने की इच्छा हुई। इस कारण संघस्थान पर उपस्थित बहुत से स्वयंसेवकों को निवासस्थानों पर जाने के लिये वाध्य होना पड़ा। अन्यथा भेट मुलाकात, वातचीत और स्मृति-मंदिर के निरीक्षण में उन्होंने सम्पूर्ण रात विता दी होती। दूसरे दिन प्रातःकाल केवल स्वयंसेवकों के लिये बौद्धिक वर्ग हुआ जिसमें श्रीगुरुजी ने एक घंटे तक मार्गदर्शक भाषण दिया।

बौध्दिक वर्ग

" कल स्मृति–मंदिर का उद्‌घाटन हुआ। स्मारक निर्माण होने पर भी, महान् साधु संतों के विषय में पूज्यभाव व्यक्त करने के लिये निर्मित होने वाले समाधि के समान इस स्मृति–मंदिर के सम्बन्ध में हमारी धारणा न बने। यह ठीक है कि नवनिर्मित यह स्मृति–मंदिर सम्पूर्ण हिन्दूसमाज का श्रद्धाकेन्द्र है और दिनोंदिन उसका महत्व बढ़ता ही जायगा। फिर भी हमें उसे केवल एक पूजास्थान मात्र ही नहीं बनाना है। स्वयं डॉक्टर साहब को ऐसी पूजा अरुचिकर थी। उनके छुटपन की एक

घटना है। एक बार एक धार्मिक प्रवृत्ति के गृहस्थ उनके घर में अतिथि के रूप में आये। प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर वे भगवद्गीता का पाठ करने बैठे। पाठ समाप्त होने पर उन्होंने पुस्तक पर पुष्प चढ़ाकर भक्तिभावपूर्वक उसे प्रणाम किया। डॉक्टर साहब ने उनसे पूछा कि गीता में बताये हुये मार्ग के अनुसार आप व्यवहार करने का प्रयत्न तो अवश्य ही करते होगें। अतिथि महोदय डॉक्टर साहब के इस कथन पर अत्यन्त कुपित होकर बोले "भगवद्गीता पाठ करने की चीज है। उससे ही मनुष्य का उद्धार होता है।" परन्तु चारित्र्य सम्पन्न न बनते हुये अथवा सद्गुणों का विकास न करते हुये, पूजा मात्र से मनुष्य का उद्धार हो जाता है, यह बात अपने हिन्दू धर्मग्रंथों में अथवा अपनी परम्परा में कहीं पर भी नहीं कही गई है। मृत्यु के समय अपने पुत्र "नारायण" का नामोच्चार करने मात्र से मृत्युपाश से अजामिल के मुक्त हो जाने की बात कही जाती है। अज्ञानी लोगों की धारणा है कि मरते समय अजामिल ने अपने पुत्र नारायण का नामोच्चार किया और इस कारण ही उसका उद्धार हो गया। पर वस्तुस्थिति यह नहीं है। "नारायण" नाम के उच्चार से मृत्युपाश से छुटकारा मिलते देख कर अजामिल को अपने पापी-जीवन पर पश्चात्ताप हुआ और इस बात का साक्षात्कार होने पर कि नाम लेने से तो केवल मृत्युमुख से ही छुटकारा मिला है, जन्ममरण के फेरे से सर्वदा के लिये मुक्त होने के लिये तो कठोर उपासना करनी होगी, उसने अपना शेष जीवन कठोर तपस्या करने में व्यतीत किया। अपने शास्त्रों ने, परम्परा अथवा संस्कृति ने यह उपदेश कभी नहीं किया कि परिश्रम के बिना कभी मुक्ति मिल सकती है। वास्तविक रूप में तो कोई विशिष्ट पूजा का स्थान मनुष्य को विशिष्ट तत्व का स्मरण कराने वाला प्रेरणादायक स्थान होना चाहिये। उस पूजा स्थान के दिव्य चैतन्य की स्मृति हृदय में जागृत रखते हुये, और वह चैतन्य जितने अधिक प्रमाण में हृदयंगम कर सके, उतना हृदयंगम कर, इतना ही नहीं तो उस चैतन्य से पूर्णतः समरस होने की आकांक्षा रखकर, तदनुरूप अपना जीवन ढ़ालने का सफल प्रयास होना चाहिये। वैचारिक श्रेष्ठता, जीवन की पवित्रता और शुचिता, गुणों की सम्पदा और सद्भावपूर्ण हृदय की

विशालता स्वयं में प्रकट करने का प्रयत्न हो तभी पूजा–स्थान के निकट जाना सार्थक हो सकेगा। श्रद्धास्थान के निकट जाकर जितनी मात्रा में हम उसके अनुरूप बनने का प्रयास करेंगे उतनी ही मात्रा में वह पूजा सफल मानी जायगी। पूजन के इस वास्तविक रूप को ध्यान में रखकर हमें अपने जीवन का विचार करना चाहिये। डॉक्टर साहब के द्वारा दिये गये आदेशों को अपने हृदय में जागृत रखकर तदनुसार अपना जीवन ढालने का हमें प्रयास करना चाहिये।

" डॉक्टर साहब के अनेक गुणों का तो वर्णन करना भी असंभव है। तो फिर उनके जीवन की कुछ प्रमुख बातों की ओर ही ध्यान देने का हम प्रयत्न करें। डॉक्टर साहब ने एकाग्रचित्त से अपनी मातृभूमि, अपने समाज, संस्कृति, धर्म और राष्ट्र का अहोरात्र चिंतन किया, उपासना की। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी बात को उन्होंने अपने जीवन में स्थान नहीं दिया। अब हम स्वयं इस दृष्टि से अपने जीवन का विचार करें। स्वार्थ, मोह, चारों ओर के वातावरण में व्याप्त भिन्न भिन्न विचारों का संघर्ष तथा अन्य आकर्षणों से अपने हृदय को विचलित न होने देते हुये, अपनी मातृभूमि, अपना समाज, स्वधर्म और अपने अन्त:करण की सम्पूर्ण शक्ति लगाकर चिरंजीव राष्ट्रजीवन का चिन्तन करने में अपना जीवन समरस होना चाहिये। एकाग्रचित्त से किये गये चिन्तन का स्वाभाविकरूप से यह फल मिलता है कि किसी भी बुरी बात की ओर मन आकृष्ट नहीं होता। परमेश्वर के व्यक्त स्वरूप अपने पवित्र राष्ट्र के चिन्तन में समरस हुये जीवन में कुविचार, अनीति, पाप आदि का प्रवेश हो ही नहीं सकता। समग्र समाज के अभ्युदय के लिये कार्य करना हो तो अपना जीवन पवित्र होना ही चाहिये। एकाग्र चित्त से किये गये राष्ट्र–चिन्तन से स्वाभाविक रूप से शुचितापूर्ण तथा मांगल्यमय जीवन निर्माण होगा। डॉक्टर साहब का अन्तर्बाह्य जीवन अत्यन्त पवित्र और शुद्ध था और उन्होंने उसे स्वराष्ट्र के सर्वांगीण चिन्तन में खपा दिया। उन्हीं के समान पवित्र और तेजस्वी जीवन अपना कैसे बनेगा, इस ओर हमें ध्यान देना चाहिये।

" स्वराष्ट्र के अभ्युदय के लिये डॉक्टर साहब के द्वारा किये गये मार्ग-दर्शन का भी हमें स्मरण करना चाहिये। आज की परिस्थिति में उस मार्गदर्शन की अतीव आवश्यकता है। उन्होंने कार्य के अनुकूल एक अत्यन्त सरल पद्धति हमें उपलब्ध कराई है। सम्पूर्ण राष्ट्र के रोग का निदान कर उन्होंने यह भी बता दिया कि उसका क्या उपचार करना चाहिये। उन्होंने बताया कि असंगठित अवस्था, आत्मविस्मृति, परस्पर एक दूसरे के विषय में स्नेह का अभाव ही समाज का मुख्य रोग है और उसे दूर करने के लिये सुसंगठित और एकात्म–राष्ट्र स्वरूप के साक्षात्कार से जागृत जीवन प्रस्थापित करना होगा। रोगमुक्ति का उपाय बताकर उन्होंने शाखा के रूप में तदनुरूप काम का स्वरूप भी सबके सामने रखा। संगठित, एकात्म, प्रबल राष्ट्रज़ीवन निर्माण करने का यही एकमेव उपाय है और एकान्तिक निष्ठा से उसी का अवलम्बन कर हम राष्ट्र अभ्युदय के लिये समाज की संगठित शक्ति खड़ी कर सकेंगे। ऐसा करते समय अपने चारों ओर चलने वाले कार्यों का आकर्षण होना अस्वाभाविक नहीं है। जुलूस, सम्मेलन, सभा आदि की हलचल जहां रहती है वहां मन में कुछ गुदगुदी सी उठ सकती है। उस कार्य-पद्धति में मान–सन्मान प्राप्त होने के कारण अपने में से भी कुछ लोगों के मन में उस के प्रति आकर्षण उत्पन्न होकर, स्वयं भी उस अखाड़े में उतरकर दंगल में भाग लेने की इच्छा होती है। मन में इस प्रकार की इच्छा उत्पन्न होते ही, ' इस प्रकार के कार्य से राष्ट्र का हित होगा, ' इस बात के समर्थन में बुद्धि अनेक तर्क प्रस्तुत करती है। उलटे सीधे दोनों ही पक्षों के समर्थन में तर्क प्रस्तुत करने में बुद्धि सदैव सक्षम रहती है। चुनावकाल में एक सज्जन ने मुझसे कहा कि ' चुनाव और राजनीति ही समाज व राष्ट्र की सेवा करने का श्रेष्ठ मार्ग है। ' मैंने उनसे कहा कि चुनाव और राजनीति को ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग मानना उचित नहीं होगा। इंग्लैण्ड आदि देशों में, जहां पर अभिजात देशभक्ति कीं परम्परा चली आ रही है, वहां ये सब बातें शोभा देती हैं। अपने यहां तो राष्ट्रभक्ति की भावना कुछ थोड़े से लोगों तक सीमित है। और उनमें भी ऐसे लोग है जो मान और पद की लालसा से राष्ट्र कार्य में सलग्न है। एक बार जब डॉक्टर साहब के सम्मुख एक सज्जन का परिचय " देशभक्त " कह

कर कराया गया, तो उन्हें वह अच्छा नहीं लगा। किसी एक को देशभक्त कह कर उसका परिचय कराने का अर्थ तो यही होता है कि बाकी के लोग देशभक्त नहीं है। वास्तविक रूप से यह बात ठीक नहीं कि किसी भी देश में कुछ ही लोग देशभक्त हो और शेष देशभक्ति की भावना से शून्य रहे। देश का प्रत्येक नागरिक स्वभावतः देशभक्त होना ही चाहिये और देशभक्त कहकर अलग से उसका परिचय करा देने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिये। किसी व्यक्ति का परिचय कराते समय हम यह नहीं कहते कि यह "मनुष्य" है। कारण, सर्वसामान्य व्यक्ति के ही समान उसे आँख, कान, नाक, हाथ पैर आदि रहते हैं। पूंछ या सींग जैसे कोई अलग अवयव उसे नहीं होते। उसी प्रकार "प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः ही देशभक्त होना चाहिये" यह मान्यता होने के कारण उसके देशभक्त होने का अलग से परिचय कराने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिये। जिस समाज में जन्म से ही प्राप्त संस्कारों के कारण अभिजात देशभक्ति की भावना व्यक्ति व्यक्ति के अन्तःकरण में अंकुरित होती है--संवर्धित होती है--घर का काम छोड़कर राष्ट्र के लिये अपना सब कुछ अर्पण करने की वृत्ति जहां बनी रहती है--और एक सूत्रबद्ध जीवन का निर्माण होता हैं-उस समाज में चुनाव, राजनीति आदि बातें समाज का सुख सौन्दर्य वृद्धिगत करने में कारणीभूत होती हैं। जिस प्रकार बलिष्ठ शरीर पर ही वस्त्रालंकार आदि शोभायमान होते हैं, जिसके हाथ पैर लकड़ी के समान सूख गये हैं ऐसे शरीर पर वह शोभा नहीं पाते-अथवा जिस प्रकार कोई रोगग्रस्त शरीर पकवान नही पचा सकता उसके लिये जैसे वलिष्ट, निरोग शरीर आवश्यक होता है उसी प्रकार शक्तिशाली, निरोग, पुष्ट राष्ट्रजीवन हो तो ही चुनाव या राजनीति सदृश्य आवरण शोभा पाते हैं-उनके कारण उस राष्ट्र का सुख सौन्दर्य बढ़ता है-वे सब उनके लिये उपकारक सिद्ध होते हैं।

"व्यक्ति व्यक्ति के जीवन में मातृभूमि की भक्ति जगाकर और उस सूत्र में सम्पूर्ण समाज को आबद्ध कर, समाज का संगठित सामर्थ्य निर्माण करने का मूलभूत कार्य डॉक्टर साहब ने हमारे सामने रखा है और इसी कार्यार्थ हमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगानी चाहिये। शाखाओं के

द्वारा समाज में एकात्म जीवन निर्माण करने की पद्धति का पूर्णतः अवलम्बन कर, इस कार्य की सिद्धि के लिये हम अपना सम्पूर्ण सामर्थ्य दांव पर लगा देंगे, ऐसा दृढ़ निश्चय हृदय में धारण करना चाहिये। उसके लिये हमें इस स्मृति–मन्दिर के दर्शन मात्र से अपने अन्दर संघसंस्थापक के समान तपस्वी, राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत जीवन निर्माण करने की प्रेरणा प्राप्त करनी होगी। यदि ऐसा हो सका तभी इस स्मृति–मन्दिर के निर्माण में जो परिश्रम किया गया है, वह सार्थक कहा जायगा।

" एक पूजा का स्थान निर्माण कर हम उसके महन्त बन जाय इस प्रकार की भूमिका से इस स्मृति–मन्दिर का निर्माण नहीं हुआ। ईंट–पत्थर से निर्मित होने वाली वस्तुओं में मेरी कोई रुचि नहीं। ऐसा होते हुए भी मुझे यह स्मृतिमन्दिर चाहिये। कारण, यह स्थान अत्यन्त पवित्र है। जिस भूमि पर संघसंस्थापक ने विचरण किया, अपने कार्य के लिये उन्होंने जहां अपने खून का पसीना वहाया, और अन्त में चिरविश्रान्ति के लिये उन्होने जहां अपना शरीर त्याग किया वह पवित्र स्थान हमें अपना जीवन उनके समान बनाने की प्रेरणा दें—इस श्रद्धायुक्त भावना से ही हमें इस स्मृति–मन्दिर को देखना है।"

बौद्धिक वर्ग के उपरान्त अधिकांश लोग पुनः एक बार जी भर कर स्मृति–मन्दिर का दर्शन कर अपने अपने कार्यक्षेत्र को वापस जाने की तैयारी में संलग्न हो गये।

सभी से मिलते जुलते हुए स्वयंसेवकों ने बिदा ली। उनके मनश्चक्षुओं के सन्मुख उद्घाटन समारोह के विविध प्रसंगों के चित्र नाच रहे थे.। जिस महान् आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये ये लोग एकत्र हुये थे, उस महापुरुष के द्वारा प्रवर्तित मार्ग पर अक्षुण्ण गति से आगे ही आगे बढ़ने के दृढ़ निश्चय की ज्योति सभी के अन्तःकरण में जल रही थी।

★ ★ ★

५ : भाव–पुष्पांजलि

आद्य सरसंघचालकांस

अमूर्त मूर्त मूर्तिमंत तुजसमान होऊं दे ।
येत शरण तव पदांसि देशकार्यीं विरमुं दे ।। धृ० ।।

उमलतील ह्या कळया ।
हळुहळूचि पाकळया ।
तत्सुगंध तुजसमान सर्व दूर पसरुं दे ।। १ ।।

आद्य सरसंघचालक के प्रति

हे अमूर्त मूर्त मूर्तिमान् ।
हम सबको अपने समान बनाओ ।
हम सब आपके शरण आते हैं ।
हमें देशकार्य में रत होने की प्रेरणा दो ।

आज की इन कलियों की पखुँडियां
धीरे धीरे खिल ऊठेंगी ।
और उनका सौरभ सब दूर
तुम्हारे ही समान फैलेगा ।

पुष्पफलें नको अम्हांसि ।
अर्पु दे तुझ्या पदांसि ।
स्वार्थाचें होमहवन तुजपुढेंचि होउं दे ॥ २ ॥

अम्हांसि तूंचि ध्येय-देव ।
सेवुं धरुनि भक्तिभाव ।
पूजनें तुझ्या अम्हांसि देवरूप होउं दे ॥ ३ ॥

असति भव्य-दिव्य दीप ।
तेज तुझें असे अमूप ।
ज्योत तीच आमुच्याहि हृदयांतरि उजळुं दे ॥ ४ ॥

करुनिया तुझ्या समान ।
होउं देच वर्धमान ।
देश धर्म संस्कृतिचें संरक्षण होउं दे ॥ ५ ॥

हमें फलों और पुष्पों की आकांक्षा नहीं ।
इन्हें हमें तुम्हारे चरणोंपर चढ़ाने दो ।
स्वार्थ का होम भी हमे तुम्हारे सन्मुख करने दो ।

तुमही हमारी ध्येय देवता हो ।
भक्तिभाव से हम तुम्हारी सेवा करेंगे ।
और तुम्हारी पुजा कर करही हम देवरूप प्राप्त करेंगे ।

तुम भव्य और दिव्य दीप हो ।
और तुम्हारा तेज असीम है ।
यही ज्योत हमारे हृदयांतर में भी जलने दो ।

हम सबको अपने समान बनाओ ।
और वर्धमान करो । और
देश, धर्म और संस्कृति का संरक्षण होने दो ।

★ ★ ★

समाधीपुढें

तुझें तेज अंगीं शतांशें जरीहि ।
उजाळूनि देऊं दिशा दाहि दाहि ।
स्मितानें तुझ्या विश्व तेजें भरेल ।
तमाचें कुठें नांव तेव्हां उरेल ॥ १ ॥

मुखांतून ये ना जरी शब्द कांहीं ।
अभागी जना या, तरी यापुढेंही ।
तुझे धीरगंभीर ते शब्द कानीं ।
अजूनि अम्हां देति उत्साहवाणी ॥ २ ॥

समाधी तुझी ही इथें बांधलेली ।
म्हणूनीच भूमी असे पुण्यशाली ।
हवेचा इथें हा अणूरेणु पूर्ण ।
तुझ्या आत्मतेजें असे दीप्तिपूर्ण ॥ ३ ॥

समाधि के सम्मुख

तुम्हारे तेजका एक शतांश भी यदि
हमे प्राप्त हुआ तो हम दसों दिशा यें प्रकाशित कर देंगे।
तुम्हारे स्मित मात्र से विश्व तेज से परिपूर्ण होगा
तब तम का नाम भी नही रहेगा।

हम अभागी जनों के लिए तुम्हारे मुख से
शब्द न निकलते हो, फिरभी तुम्हारी धीर गंभीर वाणी
हमारे कानों में गूंजती रहती है।
और हमे उत्साहित करती है।

तुम्हारी समाधि यहाँ बनने के कारण ही
यह भूमि पुण्यशालिनी है
यहाँ की वायु का प्रत्येक कण
तुम्हारे आत्मतेज से दीप्तिपूर्ण हुआ है।

समाधिस्थ होतां तुवां हा दिलेला ।
करांतील तो दीप आम्हीं धरीला ।
पुढें चालवूं कार्य तूझें सदाहि ।
उजाळून देऊं दिशा दाहि दाहि ॥ ४ ॥

स्मृतीनें तुझ्या मात्र अश्रू गळावे ।
सुचावें न कांहीं मनाशीं रडावें ।
पुसूनीच अश्रू पुढें जावयातें ।
तुझा याचितो स्पर्श मी एक हातें ॥ ५ ॥

मुखीं नाम राहो सदा केशवाचें ।
तरूनी तदा अश्मही जावयाचे ।
प्रसादें तुझ्या शक्ति ती अंगि येवो ।
समाधीपुढें प्रार्थना हीच होवो ॥ ६ ॥

समाधिस्थ होते समय तुम्हारे हाथ का
दीप हमने सम्हाला है ।
तुम्हारा कार्य हम सदा के लिये आगे चलायेंगे
और दश दिशायें प्रकाशित करेंगे ।
तुम्हारी स्मृति होते ही आँखे अश्रूसिक्त होती हैं ।
कुछ भी सूझता नहीं और मन रो पडता है ।
फिर भी आँसू पोछते हुये हमे आगे बढना है,
और तुम्हारे स्पर्श की याचना करनी है ।
केशव का नाम सदा मुखमें रहे ।
इससे पत्थर भी तर जायेंगे ।
तुम्हारे कृपाप्रसाद से वह शक्ति हमें प्राप्त हो,
यही तुम्हारी समाधि के सम्मूख हमारी प्रार्थना है ।

★ ★ ★

॥ श्रीकेशवाष्टकम् ॥

हिन्दुर्विशालगुणसिन्धुरपीह लोके ,
बिन्दूयते विघटितो न करोति किंचित् ।
सत्संहतिं घटयितुं जननं यदीयम्,
तं केशवं मुहुरहं मनसा स्मरामि ॥ १ ॥

भव्यं वपुः स्मितमुदारमुदग्रमोजः,
सस्नेहगद्गदवचो मधुरं हितं च ।
वात्सल्यपूर्णममलं हृदयं यदीयम्,
तं केशवं मुहुरहं मनसा स्मरामि ॥ २ ॥

संघे कलौ भवति शक्तिरिति प्रसिद्धम्,
जानाति हिन्दुजनता न तु तत्कथंचित् ।
सम्यग् विनेतुमिह तद् हृतवान् वपुर्य-
स्तं केशवं मुहुरहं मनसा स्मरामि ॥ ३ ॥

क्षुद्रं न किंचिदिह नानुपयोगि किंचित्,
सर्वं हि संघटितमत्र भवेत्फलाय ।
इत्थं जनं विनयति स्म निरंतरं य-
स्तं केशवं मुहुरहं मनसा स्मरामि ॥ ४ ॥

आर्यक्षितेरिह समुद्धरणाय दास्यात्,
दास्यामि देहमिह संघटनां विधातुम् ।
निश्चित्य भीष्ममचरत् सततं व्रतं य-
स्तं केशवं मुहुरहं मनसा स्मरामि ॥ ५ ॥

यो डाक्तरेति भिषजां पदमादधानो,
विज्ञातवान् भरतभूमिरुजां निदानम् ।
संघौषधं समुदपादि नवं च येन,
तं केशवं मुहुरहं मनसा स्मरामि ॥ ६ ॥

एको बहुः किल भवेयमितीश्वरेच्छा,
सैवाभवत् सततमेव परा यदन्तः ।

एकश्च यो विहितवानिह संघसर्गम्,
तं केशवं मुहुरहं मनसा स्मरामि ।। ७ ।।

ऐशं हि कार्यमिदमित्यवगत्य सम्यक्,
संघक्रतौ घृतमिवार्पयदायुराज्यम् ।
यो जीर्णदेहमजहान्नवतां समेतुम्,
तं केशवं मुहुरहं मनसा स्मरामि ।। ८ ।।

अष्टकं केशवस्येदं प्रातर्नित्यं पठन्ति ये ।
संघकार्ये न काठिन्यं तेषां भवति कर्हिचित् ।।

★ ★ ★

लो श्रद्धांजलि

लो श्रद्धांजलि राष्ट्रपुरुष शतकोटि हृदय के कंज खिले हैं ।
आज तुम्हारी पूजा करने सेतु हिमाचल संग मिले हैं ।। धृ० ।।

माँ के पद–पद्मों में तुमने जो अमूल्य उपहार रखा है ।
सत्य, चिरन्तन, अक्षय है, हिंदू की अमिट रूपरेखा है ।
पावन संस्कारोंसे निर्मित तन मन ये अनभेद्य किले हैं ।। १ ।।

तुमने किया व्यतीत कठिनतम लोक-प्रसिद्धिपराङ्गमुख जीवन ।
भीष्म समान रहे तुम अविचल हिंदुराष्ट्र के हित आजीवन ।
देव तुम्हारी घोर तपस्या के ही तो ये सुफल मिले हैं ।। २ ।।

तुम अजात–अरि, लोकसंग्रही, संघ-शक्ति के वलय–कोण थे ।
देव बता दो प्रतिपक्षी–भी क्यों इतने संतुष्ट, मौन थे ।
सुनकर पावन चरित तुम्हारा कोटि हृदय प्रस्तर पिघले है ।। ३ ।।

आज तुम्हारी पार्थिव प्रतिमा चर्म चक्षुओं से अदृश है ।
किन्तु कोटि उर–निलयों में, तव दिव्य मूर्ति रहती अजस्र है ।
तेजोमय प्रतिबिम्ब तुम्हारे स्वयंसिद्ध अगणित निकले हैं ।। ४ ।।

★ ★ ★



६ : विचार–धारा

१—विषयसूत्र

आज हम पर असंख्य आपत्तियां टूट पड़ी हैं। फिर भी हम दुर्बल बने हैं। हम न अपनी स्त्रियों की रक्षा कर सकते हैं न अपनी बहू बेटियों की लाज बचा सकते हैं। अन्य समाज हमें अपना भक्ष्य समझते हैं। वे हमें गाजर–मूली समझते हैं। उनकी ऐसी कुछ समझ हो गई है कि हिन्दुओं की बहु–बेटियां उनकी ही सम्पत्ति हैं। हमारी दुर्बलताओं के कारण ही उन्हें हम से डरने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। आज हिन्दुस्थान में हम हिन्दू पच्चीस करोड़ हैं। इस देश की कुल जनसंख्या पैंतीस करोड़ है। शेष दस करोड़ आये कहां से? ये दस करोड़ लोग हममें से ही निकलकर गये हुए हैं। हमारी गहरी नींद के कारण वे हम में से चले गये। हम सोते रहे इसीलिये वे हमसे बिछुड़ गये। अब भी तो हमारी आंखें खुल जायँ। आगे कभी यह पाप हम से न हो। जो आज हमें केवल गाजर–मूली समझ बैठे हैं उन्हें कल हमसे भय लगना चाहिये। हम वस्तुतः इतने दुर्बल नहीं हैं कि जो चाहे सो हमें निगल जाय। हमारे इसी घोर पाप के कारण हमारे ये अंग कट गये। अब हम भी कंटीले हो गये हैं। अब दूसरों को यह मालूम हो जाना

'विचार–धारा' में परमपुजनीय डॉक्टर साहब के द्वारा दिये कुछ भाषणों का सारांश दिया गया है। उन में कालक्रम के सबंधका उल्लेख वैसेही कायम रखा है।

चाहिये कि यदि उनमें से कोई हमें अपने मुह में डालने का प्रयास करेगा तो उसका मुंह लोहूलुहान हो जायगा। अपने समाज को बलशाली और संगठित करने के लिये राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने जन्म लिया है। इसकी शाखायें समस्त भारतवर्ष में हिन्दू समाज को बलिष्ठ बनानेका कार्य कर रही हैं। समूचे हिन्दुस्थान में एक भी कस्बा, एक भी गांव ऐसा न बचे जहाँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा न हो। इन सब शाखाओं में एकसूत्रता का होना आवश्यक है। ऐसा होने पर ही हम हिन्दुओं में प्रखर तेज, प्रचण्ड आत्म-विश्वास तथा असीम सामर्थ्य निर्माण हो सकेगा। तब फिर हमारी बराबरी करनेवाला इस संसार में कोई न रहेगा। इसके लिये आप सबका सहयोग आवश्यक है। यदि आप कहेंगे कि हम तो अलग रहेंगे और दूर से खड़े-खड़े देखते रहेंगे तो उससे कुछ लाभ नहीं। यह संघ है तो सब हिन्दुओं का न ? बस, फिर सब हिन्दुओं को इसमें सम्मिलित हो जाना चाहिये। यह संघ तो आप सब लोगों का है। संघ में जाति-विशेष का महत्त्व नहीं, व्यक्ति विशेष के बड़प्पन को स्थान नहीं तथा स्थान-विशेष संबन्धी अभिनिवेश का लेश मात्र नहीं। कठिनाइयां सभी को हैं। गृहस्थी सभी के पीछे लगी है। यदि सभी अपनी कठिनाइयों का रोना रोने लगेंगे, तो हम दूसरों के भक्ष्य बनने से न बच सकेंगे। संघ-कार्य को सब बातों से अधिक महत्व का समझ कर यदि हम अपने आपको प्राण-पण से इस कार्य में लगा दें, तो कल कम से कम हमारी संतान हिन्दू के नाते जीवित रह सकेगी। हम हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए इतना कुछ कर जाँय कि जिससे हमारे पश्चात् भी हिन्दू धर्म में चैतन्य बना रहे। हमें सौंपी गई यह धरोहर चोरों के हाथ न लगने पावे। हम सचेत रह कर इसकी रक्षा करते रहें।

२. जागतिक परिस्थिति और हिन्दुओं का भवितव्य

यदि हम पृथ्वी का मानचित्र खोलकर देखें तो हमें क्या दिखाई देगा ? यदि एशिया, यूरोप, अमेरिका तथा अफ्रीका महाद्वीपों को सरसरी दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि ईसाई, इस्लाम, हिन्दू तथा बौद्ध धर्मों के अनुयायी चारों महाद्वीपों में फैले हुए हैं। संसार में ईसाई धर्म के मानने-

वालों की संख्या सबसे अधिक है। इसके बाद मुसलमानों का नम्बर आता है।

बौद्ध और हिन्दू लोग केवल एशिया महाद्वीप में पाये जाते हैं। विशेषतः हिन्दुओं की संख्या तो केवल हिन्दुस्थान में ही अधिक है, किन्तु यहां भी सब ही भागों में वे बहुसंख्या में नहीं है। इस देश की पैंतीस करोड़ जनसंख्या में से केवल पच्चीस करोड़ हिन्दू हैं और शेष दस करोड़ लोग कम से कम आज तो हिन्दू नहीं हैं। ये दस करोड़ भी पहिले कभी हिन्दू ही थे, परन्तु हम अपनी उदासीनता तथा निष्क्रियता के कारण उन्हें गवां बैठे हैं। आज का अफगानिस्तान कभी हमारा गांधार देश था। आज वह पूर्णतया इस्लामस्थान बन गया है। काश्मीर रियासत पहिले से हिन्दुओं की रही है, किन्तु आज वहां नब्बे प्रतिशत जनसंख्या मुस्लिम है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि वहां का नरेश हिन्दू होते हुए भी वहां मुस्लिम ही बहुसंख्या में हैं। काश्मीर हिन्दुस्थान का नन्दनवन माना जाता है। किन्तु वही नन्दनवन बहुसंख्य मुसलमानों का निवास-स्थान बने यह बात अवश्य उद्वेगजनक है।

इसी प्रकार पंजाब और सिंध के प्रांतों में भी मुसलमान बहुसंख्या में हैं। बंगाल प्रांत एक समय हमारी सुवर्ण–भूमि था तथा विद्या का केन्द्र था। किन्तु आज वहां भी पचपन प्रति सैंकड़ा संख्या मुसलमानों की ही है। यह भी हमारे लिये कम आश्चर्य की बात नहीं है। इसी प्रकार न केवल उत्तरी हिन्दुस्थान में मुस्लिम जनसंख्या प्रभावशाली है, अपितु नर्मदा के दक्षिण में भी निजाम हैदराबाद जैसी मुस्लिम रियासत है जिसका शासक एक कट्टर मुसलमान ही है। एक जिम्मेवार मुसलमान व्यक्ति ने एक बार यहां तक कह डाला था कि उत्तर में मुसलमानों की बहुसंख्या होने के कारण उत्तर हिन्दुस्थान में केवल मुसलमान ही रहें। यह इस बात का संकेत है कि हिन्दुस्थान में भी इस्लामस्थान भली–भांति स्थापित हो जाय। निजाम हैदराबाद के द्वारा इस्लाम धर्म का प्रचार करने तथा उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के हेतु अत्यन्त प्रोत्साहन दिया जा रहा है। कहने का आशय केवल इतना ही है कि जहां चार पांच सौ वर्ष पूर्व

हिन्दुस्थान पर ही नहीं, अपितु उसके आस-पास के देशों पर भी हिन्दुओं का आधिपत्य था वहां आज दशा यह है कि खास हिन्दुस्थान में भी हिन्दू इस देश को हिन्दुस्थान नहीं कह सकते।

पैंतीस करोड़ से घटते घटते हम पच्चीस करोड़ रह गये हैं। यदि यही दशा कुछ शताब्दियों तक बनी रही तो एक दिन ऐसा भी आ जावेगा जब हिन्दू ढूंढ़ने से भी न मिलेंगे। इतने विस्तारपूर्वक सारी परिस्थिति आपके सामने रखने का प्रयोजन यही है कि हम यह स्पष्टतया देख सकें कि हमारी क्षति कितनी द्रुतगति से होती जा रही है। इसके ठीक विपरीत मुसलमान लोग सबके सामने खुल्लम–खुल्ला पाकिस्तान की मांग ब्रिटिश लोगों के सामने पेश कर रहे हैं। इस दशा में हमें सतर्क रहकर आत्म-संरक्षण के लिये संगठित हो जाना चाहिए। हममें सामाजिक भावना का अभाव ही हमारी क्षति का कारण बन गया है। हमें तो केवल अपनी ही व्यक्तिगत चिन्ता बनी रहती है। हम अपने समाज तथा संस्कृति का विचार भी मन में नहीं लाते। यदि इस शोकजनक परिस्थिति को बदल देना हो तो हमें अपना संगठन करना ही होगा। लोग कभी कभी पूछ बैठते हैं कि कहिये, हिन्दू लोग एकाकी हिन्दुस्थान की उन्नति कैसे कर सकेंगे ? इस पर मेरा उनके सामने एक ही प्रश्न है कि जहां यूरोप में चार पांच करोड़ लोग ही विशाल साम्राज्यों की बागडोर संभाल सकते हैं, क्या वहाँ पच्चीस करोड़ हिन्दू भी हिन्दुस्थान की उन्नति नहीं कर सकते ?

आज हमारा हिन्दू समाज संकटों से चारों ओर से घिरा हुआ है। इसके लिए हम ही दोषी हैं। हम दुर्बल हैं, हम सोये हुए हैं। एक ओर हमारे परधर्मीय शासकों का राजकीय प्रभुत्व, दुसरी ओर मुसलमानों के हम पर होने वाले सामाजिक अत्याचार। कैंची के इन दो फालों के बीच हमारा हिन्दू समाज आ फंसा है। मुसलमान बनाने के लिए हिन्दुओं पर किए जानेवाले अत्याचारों तथा हमारी बहू–बेटियों पर होने वाले बलात्कारों के विषय में यदि वर्णन करने लगू तो भावनाएँ वश में न रहेंगी। इसलिए मैं वे बातें अभी नहीं कहना चाहता। इसी प्रकार ईसाइयों की ओरसे भी हम पर निरन्तर आघात हो रहे हैं।

यदि हमें उपर्युक्त आघातों से अपने समाज की रक्षा करनी हो तो अपने बीच संगठन निर्माण करना ही होगा। हम लोग बिखरे हुए न रहें इसी एकमेव उद्देश्य से सन् १९२५ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ स्थापित हुआ। उस समय हम लोगों को देशद्रोही कहा गया; किन्तु आज स्थिति में वहुत परिवर्तन हो चुका है। यह संघ दिन दूना रात चौगुना वढ़ रहा है। लगभग दो सौ शाखाएँ फैली हैं, जिसमें बीस हजार स्वयंसेवक नित्य–प्रति नियमित रूप से कार्य करते हैं। परन्तु अभी बहुत काम शेष है। समस्त भारत वर्ष में संघ की शाखाओं का जाल फैलाना चाहिए। ऐसे संगठन से ही हमारी दुर्बलता दूर होगी तथा हमारा समाज सामर्थ्यशाली और प्रभावशाली बनेगा। यह कार्य किन्हीं एक–दो व्यक्तियों का नहीं है, अपितु समस्त हिन्दू समाज का है। वृद्ध जनों को परिश्रम करके युवकों की सहायता करनी चाहिए, तभी यह कार्य जोर–शोर से बढ़ेगा। आज तक के अनुभव से हम यह दावे के साथ कह सकते हैं, कि हम इस कार्य में अवश्य सफल होंगे। हमारा विश्वास है कि भगवान हमारे साथ हैं। हमारा काम किसी पर आक्रमण करना नहीं, अपितु शांति और संगठन का है। हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के लिए हमें पवित्र कार्य करना चाहिए और अपनी उज्ज्वल संस्कृति की रक्षा कर उसकी वृद्धि करनी चाहिए; तभी आज की दुनियां में हम और हमारा समाज टिक सकेंगे।

३. *हमारी अवनति की जड़–मानसिक दुर्बलता*

आज चारों ओर से आवाज आ रही है कि अहिंदू समाज बहुसंख्य हिन्दुओं पर आक्रमण कर रहे हैं। परिस्थिति ऐसी क्यों है? अहिन्दू समाज के लोग हमसे क्यों नही डरते? डरने की बात तो दूर रही, उल्टे वे हमें सताते हैं; और हम निरर्थक चिल्लाते हैं कि हम क्या करें, हमारा कोई त्राता नहीं। क्या यह करुण क्रन्दन ठीक है? अंग्रेजी में एक कहावत है "God helps those who help themselves," जिसका अर्थ है, "ईश्वर उनकी सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं।" मेरी समझ में ही नहीं आता कि भगवान् हमारी सहायता क्यों करें? उन्हें हम पर दया क्यों आनी चाहिए? हम लोग स्वयं अपनी कौनसी

सहायता कर रहे हैं, कि भगवान् बचाने के लिए दौड़े आवें ? कुछ भी नहीं। गीता में भगवान् कहते हैं, कि वे "परित्राणाय साधूनां" अवतार लेंगे। किन्तु साधु कौन ? साधु किसे कहा जा सकता है ? जिन्हें न समाज या राष्ट्र की चिन्ता है, न धर्म या संस्कृति की, और न जिन्हें निरे व्यक्तिगत स्वार्थ के सिवा अन्य कुछ सूझता है, ऐसे दुष्टों के तो संहार के लिए ही परमेश्वर का अवतार हुआ करता है। हिंदू समाज में तो ये सभी दुर्गुण पराकाष्ठा तक पहुँच चुके हैं। क्या ऐसे लोगों को दुष्ट न कहा जाय ? साधु तो वे हैं, जो धर्म, राष्ट्र, समाज तथा जनकल्याण का भाव रखते हुये सदा अपना कर्त्तव्य करने के लिए उद्यत रहते है। क्या इस प्रकार के त्यागी और कर्त्तव्य-परायण लोग हिंदू समाज में पर्याप्त संख्या में हैं ? यदि हिन्दुओं की कम से कम आधी जनसंख्या साधुता के उपर्युक्त भावों से भरी होती, तो इस महान् जाति पर निष्ठुर आघात करने का दुःसाहस कोई न करता। फिर भगवान् स्वयं धर्म-संरक्षण करने के लिये हमारे बीच उपस्थित हो जाते। किन्तु आज की अवस्था में हम भगवान् की सहायता की आशा नहीं कर सकते। यह समझकर कि इस जाति में स्वार्थी तथा दुर्बल अर्थात् पापियों की ही भीड़ है, भगवान् हम लोगों से अपना मुंह मोड़ लेंगे। यदि भगवान् का यदा-कदाचित् अवतार हुआ ही तो हमारी रक्षा के लिए नहीं, अपितु हमको नष्ट करने के लिए ही होगा; क्योंकि दुष्टों का विनाश करना ही उनका प्रण है। जब तक हम में व्यक्तिगत स्वार्थ, दुर्बलता और समाज हितों के प्रति उदासीनता इसी प्रकार रहेंगी; और जब तक हम सज्जन नहीं बनेंगे, तब तक हमें दुष्ट समझ कर भगवान् हमारे नाश के लिए ही सहायक होंगे। हां जब हम वास्तव में साधु हो जावेंगे; राष्ट्र, धर्म एवं समाज के कल्याणार्थ अपना सब कुछ होम देने पर उतारू हो जावेंगे तभी संभवतः भगवान् हमारी सहायता करेंगे।

इसी लिये आप से मेरी प्रार्थना है कि आप अपनी स्वार्थ एवं अकर्मण्यता की भावना को समूल त्याग दें। समाज-सेवा के कार्य के प्रति असीम उदासीनता होने के कारण हमारा मन अतीव दुर्बल हो गया है। "समाज चूल्हे में क्यों न जाय, मुझे उससे कोई वास्ता

नहीं। बस मेरा स्वार्थ बना रहे "। इस प्रकार के समाज सम्बन्धी उदासीनता के भाव हम में कूट-कूट कर भरे हुए हैं। इसी लिए हमारा समाज आज निर्बल हो गया है। हमारी मानसिक दुर्बलता के कटु फल हमारे समाज को भुगतने पड़ रहे हैं। मन की दुर्बलता ही सबसे अधिक घातक दुर्बलता होती है और वही है हमारा सबसे बड़ा दोष। यदि हम अपने आप को बलवान समझ कर संगठन के कार्य में लगन के साथ जुट जायें, तो हमारी शक्ति विराट् रूप धारण कर लेगी। फिर कोई भी कार्य हमें असम्भव सा प्रतीत न होगा। असली बात तो यह है कि अपने में शक्ति होते हुए भी, हम अपनी शक्ति को भूल रहे हैं। जैसे हमारे विचार होते हैं, वैसा ही हमारा आचरण होता है। अतीत काल में हम अतीव बलवान थे। परन्तु इस सत्य को आज हम बिलकुल भूल गये हैं और इसलिए हमारे आज के सारे आंदोलन दुर्बलता के विचारों को साथ लिए हुए चलते हैं। हमारे आंदोलनों में न चैतन्य है और न पुरुषार्थ। हमें 'राष्ट्र' शब्द के अर्थ का भी पता नहीं है। स्वदेश की कल्पना भी हमारे मन में कभी नहीं आती। उसको हम एकदम भूल गए हैं; उसके विषय में सोचना ही हमनें छोड़ दिया है। हिन्दुस्थान की परिभाषा पुरातन काल से असंदिग्ध रूप से चली आई है। किन्तु हिन्दुओं का हिन्दुस्थान कहते ही आज के हमारे नेतागण चौंक उठते हैं।

भारतवर्ष, भरतखण्ड, आर्यावर्त, हिन्दुस्थान आदि नामों के के द्वारा एक ही अर्थ प्रगट होते हुए भी उस अर्थ की कल्पना मात्र से हम हड़बड़ा जाते हैं। किसी बन्धन में जकड़े हुए तोते जैसी हमारी अवस्था हो रही है। हम भ्रम के भंवर में फंसे गोते खा रहे हैं। हमारी संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने पर जो लोग तुले हुए हैं, उन्हें गले लगाने के लिए हम मरे जा रहे हैं। यह सारा परिणाम है हमारी मानसिक दुर्बलता का! हिन्दुस्थान को दुनियां के सभी लोगों का समझ कर " साहेबजी हिन्दुस्थान! बन्दगी हिन्दुस्थान! गुडमार्निङ्ग हिन्दुस्थान " जैसे गीत गाते रहना और " रक्ष भारता सहायहीना ", आदि करुण प्रार्थना करना, अपनी आंतरिक दुर्बलता का परिचय करा देना है। दूसरों से सहायता

की आशा करना या भीख मांगना निरी दुर्बलता का चिन्ह है। इस लिये स्वयंसेवक बन्धुओं, निर्भयता के साथ यह घोषणा करो कि 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का ही हैं'। अपने मन की दुर्बलता को बिलकुल दूर भगा दो। हम यह नहीं कहते कि विदेशी लोग यहां न रहें। परन्तु विदेशी लोग इस बातको कभी न भूलें, कि वे हिन्दुओं के हिन्दुस्थान में रहते हैं और उन्हें हिन्दुओं के अधिकारों पर अतिक्रमण करने का कोई अधिकार नहीं। हमें ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देनी चाहिए कि हमारे सिर पर दूसरे लोग सवार न हों।

कई सज्जन यह कहते हुए भी नहीं हिचकिचाते कि हिन्दुस्थान केवल हिन्दुओं का ही कैसे ? वह तो उन सभी लोगों का है जो यहां बसते हैं। खेद है कि इस प्रकार आक्षेप करने वाले सज्जनों को राष्ट्र शब्द का अर्थ ज्ञात नहीं। केवल भूमि के किसी टुकड़े को राष्ट्र नहीं कहते। एक विचार, एक आचार, एक सभ्यता एवं एक परम्परा से जो लोग पुरातन काल से रहते चले आए हैं उन्हीं लोगों से राष्ट्र बनता है। इस देश को हमारे ही कारण हिन्दुस्थान नाम दिया गया है। दूसरे लोग यदि सामोपचार से इस देश में बसना चाहें तो, अवश्य बस सकते हैं। हमने उन्हें न कभी मना किया है, न करेंगे। पारसी समाज के उदाहरण से हिन्दुओं की उदारता का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है। किन्तु जो हमारे घर अतिथि बन कर आते हैं और हमारे ही गले पर छुरी फेरने पर उतारू हो जाते हैं, उनके लिए यहां रत्ती भर भी स्थान न मिलेगा। संघ की इस विचार-धारा को पहिले आप ठीक ठीक समझ लीजिये। हमारा संगठन इस लिये है कि हम अपने घर में सम्मान के साथ जीवित रह सकें। इसमें किसी प्रकार के अन्याय की बात नहीं।

इंग्लैंड अंगरेजों का, फ्रांस फ्रांसीसियों का, जर्मन जर्मनों का देश है। इस बात को उपर्युक्त देशों के निवासी सहर्ष घोषित करते हैं। किन्तु इस अभागे हिन्दुस्थान के स्वामी हिन्दू, स्वयं अपने को इस देश का अधिकारी कहने का साहस नहीं करते। ऐसे विपरीत भाव हममें क्यों पैदा हो गये ?

वास्तव में किसी भी व्यक्तिवाचक संज्ञा (Proper Noun) का अनुवाद अन्य भाषा में नहीं किया जा सकता। उसे वैसे ही रखा जाता है। किन्तु हमारे मन की दुर्बलता को देखते हुए "हिन्दुस्थान" यह विशेष नाम जो, कि बिलकुल यथार्थ है; उसे बदल कर हमारे प्यारे देश को "इंडिया' और उसके निवासियों को "इंडियन" नाम दे दिया गया। यह इसी हेतु से किया गया कि जिस 'हिन्दू' और 'हिन्दुस्थान' नाम के सुनते ही हमारा सारा गत इतिहास हमारी आंखों के सामने खड़ा हो जाता है, वह नाम भी सदा के लिए संसार से मिट जाय।

कोई अपढ़ आदमी भीं इस बात को समझ सकता है कि यदि वर्तमान समय में हम जी जान से प्रयत्न न करें तो 'हिन्दुस्थान' देश का नाम सिवाय इतिहास ग्रन्थों के अन्य कहीं भी शेष न रहेगा। हमारे नेता व्याख्यानों में गर्जना करते हैं कि हिन्दुस्थान देश अमर है, किन्तु इस प्रकार की थोथी बातों में क्या सचमुच कोई तथ्य है? निरी अंधश्रद्धा से ऐसे विधानों पर विश्वास न रखो। बिना विशेष पुरुषार्थ के हिन्दुस्थान को अमर बनाना असंभव है, मनुष्य अपना छोटासा संसार भी बिना प्रयत्नों के संभाल नहीं सकता; फिर राष्ट्र का विशाल जीवन-क्रम अपने प्रयत्नों के बिना आप ही आप निरंतर चलता रहेगा, ऐसी अपेक्षा करने में कितनी बुद्धिमत्ता होगी? राष्ट्र का जीवन-क्रम ठीक प्रकार से चलने के लिये तो असीम प्रयत्नों की आवश्यकता होती है। बिना प्रयत्न के सिद्धि कहां? जो सज्जन यह कहते हुए दिखाई देते हैं कि हम तो ईश्वर का भजन पूजन करते हैं, वह अवश्य हमें सफलता देगा। उन सज्जनों को मैं आवाहन पूर्वक कहना चाहता हूँ कि वे मुझे एक भी उदाहरण बतावें जहां कहीं किसी मनुष्य के केवल पूजा-पाठ करने से सौ रुपये उसके चरणों पर आ टपके हों। ऐसा तो कभी नहीं होता। बिना कष्ट उठाये कार्य होना एकदम असंभव है। हमें बहुत परिश्रम करना होगा। हां, कार्य करते समय हम भगवान का अवश्य स्मरण रखें और जो कुछ कार्य करते हैं उन्हें परमेश्वर के चरणों पर अर्पित करने की भावना रखें।

कई महाशयों के ऐसे विचार होते हैं कि अजी ! उसमें है ही क्या ? समय आने पर सब कुछ ठीक हो ही जायगा। परन्तु क्या अपने निजी मामलों में भी ये सज्जन कभी इस प्रकार सोचते हैं ? जब कभी अपने आप पर बीतती है, तब भगवान के नाम की रट लगाते कहां निश्चिन्त बैठते है ? तब तो हर तरह की उठा-पटक करके और दौड़ धूप करके अपना काम बनाकर ही दम लेते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ के अतिरिक्त जब देश, धर्म या समाज का प्रश्न आता है, तभी उन्हें भगद्वभक्ति का बहाना सूझता है। तब हम यह क्यों न कहें कि उपर्युक्त विचांरों की जड़ में सिवा स्वार्थ के कुछ नहीं है ?

दूसरी भी एक श्रेणी के लोग होते हैं, जो कहा करते हैं कि 'राष्ट्र-सेवा का समय आ जाने पर हमें पुकारो; जहां भी कहो, कूद पड़ने के लिये हम तैयार हैं'। किन्तु उनसे पूछे विना मुझसे नहीं रहा जाता कि 'भाईयो तुम्हें पुकारेगा कौन ? पुकारने का वह अन्तिम क्षण सतत कार्य करने से ही तो निकट आ सकता है। अपने अपने घर में उस समय की बाट जोहने से कहीं वह स्वयं चल कर किसी के पास आवेगा। आप निर्णायक क्षण की राह देखते हुए स्वयं तो अपने घर में बैठेंगे और आशा यह करेंगे कि दूसरे लोग अन्तिम समय को निकट लाने के लिए कार्य करते रहें। क्या यह सारा व्यवहार सुसंगत है ? अन्तिम निर्णायक क्षण इस तरह कैसे समीप आ सकेगा ? विशेषकर संघ के स्वयंसेवकों को तो स्वयं निष्क्रिय रहते हुये ऐसी बातें कहना बिल्कुल शोभा नहीं देता, कि जब वह अन्तिम क्षण आ जावेगा उस समय हम सेवा करने के लिए प्रस्तुत ही रहेंगे। ऐसी भाषा हमारे सिद्धांतों के विरुद्ध है। यही कहना पड़ेगा कि उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के लोगों ने संघ की विचारधारा को कुछ भी नहीं समझा है। यदि हमें संसार के सम्मुख यह सिद्ध कर दिखाना है कि हिन्दुस्थान हिन्दुओं का राष्ट्र है तो हमारा कर्तव्य हो जाता कि हम इस कार्य को अपना निजी कार्य समझकर उसकी सफलता के लिए आवश्यक आचार–विचारों में अपना जीवन गूंथ दें। अपने ध्येय के अनुकूल लोगों को संगठित करना हमारा सब से पहला कार्य है। जो मनुष्य अपने आपको सच्चा हिन्दू कहलाता है, उसके पास पहुँच कर हम

उसको आज की जातीय अवनति का ज्ञान करादें तथा उसको देश कार्य के लिए समुद्यत करें। ऐसे दस-पांच हिन्दू इकट्ठे हो जाने पर उनका एक मुखिया नियुक्त कर देना चाहिए, जो कुशल कर्णधार हो। इस प्रकार शहर या देहात में कहीं भी काम शुरू हो सकता है। इस प्रकार संघ की शाखाओं का जाल जब तक सारे भारतवर्ष में नहीं फैलता तब तक हम यह नहीं कह सकते, कि हमारा संगठन पूरा हो गया। संसार का व्यवहार आप जानते ही हैं। सौ रुपये की चीज दुकानदार निन्यानवे रुपये में भी देने को तैयार नहीं होता। हर एक चीज की पूरी कीमत चुकानी पड़ती है। अतः जब तक हम अपने समाज में पर्याप्त शक्ति निर्माण नहीं करते तब तक हमें निरन्तर कार्य करते रहना होगा। केवल शरीर-बल से तो काम चलता नहीं; साथ में विचार शक्ति का भी होना आवश्यक होता है। पहली आवश्यकता विचार-शक्ति की होती है। इसलिए संघ के स्वयंसेवकों को चाहिए कि वे पहले अपने आपकी मानसिक दुर्बलता प्रयत्नपूर्वक मिटा दें और फिर दूसरे साथियों में भी अपने समान मानसिक सामर्थ्य उत्पन्न करें।

आजकल अपना इतना अधःपतन हो गया है कि धर्म, संस्कृति आदि सारी बातें हम भूल गये है और व्यक्तिगत स्वार्थ के अतिरिक्त अन्य किसी भी चीज को देखने में हम बिल्कुल असमर्थ हैं। 'संसार असार है; यह जीवन मायामय है' आदि तात्विक बातें केवल पुस्तकों में ही शोभा देती हैं; उनका प्रत्यक्ष व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं। लोग हमें कहते हैं, 'आप Theoretical (सिद्धान्त की) बातें बता रहे हैं'। मानो थिओरी केवल किताबों में लिखने के लिये ही होती है; उसका Practice (व्यवहार) से कोई सम्बन्ध है ही नहीं। कितनी भ्रम-मूलक धारणा है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि मनुष्यत्व इसी में है कि सिद्धांत और व्यवहार का समन्वय हम कुशलतापूर्वक अपने जीवन में प्रकट कर सकें। यदि हम व्यक्तिगत स्वार्थ के भावों को तिलांजलि देदें तो सिद्धांत और व्यवहार का समन्वय ठीक प्रकार से हो सकता है। हर समय हमारा स्वार्थ ही हमारे कर्तव्य के रास्ते में आपत्तियों के पर्वत खड़े करता है। अतः हमारे संघ-भाईयों को स्वार्थ की इन क्षुद्र मर्यादाओं को लांघ

जाना चाहिये। पशुत्व को छोड़ कर मनुष्य बनना चाहिए। हमें पहिले मनुष्य बनना है। स्वार्थभाव का लोप हो जाने पर मनुष्यता प्राप्त करना कोई विशेष कठिन बात नहीं। मन में यह भावना दृढ़मूल हो जाय कि मेरा जीवन और मेरी सभी शक्तियां मेरे धर्म और राष्ट्र के लिये हैं। वास्तव में स्वधर्म और स्वदेश का प्रत्येक मनुष्य को स्वाभाविक अभिमान होना चाहिए। किन्तु आज हम स्वदेश और स्वधर्म को बिल्कुल भूल गये हैं, यह कितनी लज्जास्पद बात है! और यही कारण है कि बार–बार उनकी याद दिलानी पड़ती है।

जिन उद्देश्यों को लेकर हम चलना चाहते हैं, उनमें न किसी प्रकार का दोष है न किसी प्रकार का पाप। अपने धर्म और राष्ट्र की रक्षा करने का बीड़ा हमने उठाया है। इसमें कौनता पाप है? साथ साथ हम यह भी न भूलें कि यह विशाल कार्य किसी भी एक मनुष्य या चन्द मनुष्यों के हाथों संपन्न होने वाला नहीं है। उसके लिये तो एक ही ध्येय से प्रेरित लाखों, करोड़ों लोगों के संगठित प्रयत्नों की आवश्यकता है। मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि इस विशाल भारत के कोने कोने में ऐसे ध्येयनिष्ठ और बलवान तरुणों के संघ का घना जाल फैला दो। फिर इस कार्य में कोई कठिनाई न होगी। चारों ओर आशा तथा उत्साह के नवजीवन का सुन्दर चित्र सहज ही दिखाई देने लगेगा। यह परिस्थिति उत्पन्न करने के लिये हमारे आज के कार्यक्रम साधनरूप हैं। कई सज्जन इन्हीं कार्यक्रमों को संघ का उद्देश्य समझते हैं। किन्तु यह उनका भ्रम है। हमें अपने आचरण से इस असत्य धारणा को दूर करना चाहिये। देश में हमें एकसूत्रता और अनुशासन निर्माण करना है। इसका अर्थ यह नहीं कि लाठीकाठी या सैनिक शिक्षा बिल्कुल निरुपयोगी है। केवल इतनी ही बात है कि हमारे उद्देश्य की तुलना में उपर्युक्त शिक्षा गौण है। जिन्हों ने इन कार्यक्रमों को ही संघ का 'सब कुछ' समझ रखा है उनके लिये ध्येय और कार्यक्रमों का सम्बन्ध स्पष्ट कर देना मैंने उचित समझा। स्वधर्म और स्वराष्ट्र की रक्षा के लिये बल–संवर्धन करना ही संघ का उद्देश्य है, यह बात संघ के बच्चे बच्चे को मालूम है।

संसार में शांति और सुव्यवस्था के लिये समस्थिति (Balance) की आवश्यकता होती है। जहां बलहीन और बलवान इकट्ठे रहते हैं, वहां अशांति अवश्यम्भावी है। दो शेर एक दूसरे को नहीं छेड़ते। किन्तु यह बताने की आवश्यकता नहीं कि शेर और बकरी के इकट्ठा आ जाने पर क्या होता है। समान–बल वालों में शांति तथा प्रेम रह सकता है। दुनियां की शांति के सच्चे दुश्मन हैं, अत्याचारी लोगों को उत्तेजित करने वाले दुर्बल लोग। यदि हम दुर्बल हैं, तो दुनियां की सुख–शांति नष्ट करने का पाप हमारे मत्थे पड़ेगा। अतः हमारी कोशिश यही होनी चाहिये कि शांतिमय मानवी जीवन को तहस–नहस करने का पाप हमारे सिर न लगने पाये। किन्तु केवल इच्छामात्र से ही कार्य नहीं होता। साक्षात् भगवान को भी दशावतार लेकर मनुष्य–शक्ति के द्वारा ही कार्य करना पड़ा। इस शक्ति को कुछ लोग पशु–शक्ति कहते हैं। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि धर्म–रक्षा तथा जन–कल्याण के लिये जो शक्ति काम में लाई जाती है उस पवित्र शक्ति को लोग 'पशु–शक्ति' कैसे कह सकते हैं? वास्तव में तो यह शक्ति उतनी ही पवित्र एवं मंगलमय है, जितनी कि आध्यात्मिक शक्ति है। हमें हिंसा करने के लिए बलवान नहीं बनना है किन्तु संसार की सारी हिंसा और अत्याचार सदा के लिए मिटा देने के लिए ही हमें सामर्थ्य सम्पादन करना हैं। आज दुनियां में चारों ओर अन्याय, अत्याचार और अधार्मिकता का स्वच्छंद साम्राज्य फैला हुआ है। वह जब तक नष्ट नहीं होगा, तब तक हम चाहे जितने जप, तप, करें हमें मोक्ष का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। न जाने क्यों, यह सीधी सी बात लोगों की समझ में नहीं आती? बस हमारी सारी अवनति की जड़ है हमारी मानसिक दुर्बलता। इस दुर्बलता को सर्व प्रथम नष्ट कर दें। संघ के उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें क्या करना चाहिये, इसका सम्यक् ज्ञान प्रत्येक स्वयंसेवक कर लेवे। हम में से प्रत्येक की एकमेव यही धारणा हो जानी चाहिए कि मैं और मेरा सब कुछ संघ के लिए, अर्थात् देश के लिए है। प्रत्येक स्वयंसेवक के रोम–रोम में देश–प्रेम की भावना रम जानी चाहिए। केवल अवसरवादी देशभक्त बनना स्वयंसेवक के लिए व्यर्थ है।

यदि सारे स्वयंसेवकों की मनोवृत्ति इस प्रकार संघमय हो जाय तो हमारी ध्येयपूर्ति में देरी न लगेगी।

४. स्वयंसेवकों के आवश्यक गुण

यहां आप लोग राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अत्यन्त जिम्मेवार स्वयंसेवक एकत्र हुए हैं। स्वयंसेवक अवस्था में चाहे छोटा हो या बड़ा, किन्तु राष्ट्र का एक जिम्मेवार घटक (अंग) हुआ करता है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि राष्ट्र के अन्य लोग इस उत्तरदायित्व से अलिप्त रह सकते हैं। किन्तु राष्ट्र के प्रति जिम्मेवारी निभाने का संकल्प करके ही हम संघ में प्रविष्ट हुए हैं, इसीलिए हम सब स्वयंसेवकों का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है। परिवार का ही उदाहरण लीजिए। परिवार में एक व्यक्ति कर्ता (मुखिया) होता है। उसी पर सारे कुटुम्ब के पालन पोषण का भार रहता है; किन्तु इसलिए कुटुम्ब के अन्य व्यक्ति अपनी जवाबदारी भूल नहीं सकते। कुटुम्ब में हरएक को कुटुम्ब के प्रति अपनी विशिष्ट जिम्मेवारी निभानी ही चाहिए। कुटुम्ब की केवल मुख्य जिम्मेवारी चालक या मुखिया पर होती है। इसी सिद्धान्त का ध्यान रखते हुए प्रत्येक को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। हमें अपने नित्य के व्यवहार भी ध्येय पर दृष्टि रखकर ही करने चाहिए। प्रत्येक को अपना चरित्र कैसा रहे, इसका विचार करना चाहिए। अपने चरित्र में किसी भी प्रकार की त्रुटि न रहे। किसी भी आन्दोलन में साधारण जनता कार्यकर्ता के कार्य का उतना ख्याल नहीं करती, जितना कि उसके व्यक्तिगत चरित्र का; इसीलिए हमारी चादर इतनी साफ रहे कि हमारे चरित्र में ढूंढने से भी दोष या कलंक का छींटा तक न मिले। जनता को विश्वास हो जाय कि हम अपना प्रत्येक कार्य निःस्वार्थ-बुद्धि की प्रेरणा से कर रहे हैं। हमारा चरित्र इस सीमा तक उज्ज्वल हो कि जिससे अन्य लोग प्रभावित होकर हमारे निष्कलंक चरित्र पर मुग्ध होवें और हमसे मित्रता करने तथा सभी दृष्टि से हमारी हित-रक्षा करने के लिए उत्सुक रहें। संघ के अतिरिक्त अन्य लोग जो कभी संघ का उपहास तथा विरोध भी करते थे, आज हमारे स्वयंसेवकों के शुद्ध चरित्र के कारण संघ से असीम प्रेम करने लगे

हैं। यदि किसी कारण उन्हे ऐसा मालूम पड़े कि हमारा चरित्र शुद्ध नहीं है, तो संघ के प्रति उनका प्रेम, तथा हमारे प्रति उनका आदर एकदम नष्ट हो जावेगा। आप इस भ्रम में न रहें कि लोग हमारी ओर नहीं देखते। वे हमारे कार्य तथा हमारे व्यक्तिगत आचारों की ओर बड़ी आलोचनात्मक दृष्टि से देखा करते हैं इसीलिये केवल व्यक्तिगत चाल-चलन की चौकसी रखने से काम न चलेगा, अपितु सामूहिक एवं सार्वजनिक जीवन में भी हमारा जीवन उदात्त ही हो। साथ ही चरित्र निष्कलंक होने के कारण अनजानें में भी, हम में यह दुर्भावना छू तक न जानी चाहिये, कि हम कुछ हैं तथा औरों से श्रेष्ठ हैं। किसी भी दशा में, स्वप्न में भी ऐसा न मालूम पड़े कि हम अन्य लोगों से कहीं अच्छे हैं। मुझे विश्वास है कि हममें ऐसा अहंभाव रखनेंवाला कोई नहीं है, किन्तु यदि कोई ऐसा हो, जो सोचता हो कि मैं बहुत कार्य कर रहा हूं, इसलिये औरों से कुछ श्रेष्ठ हूं और इसी नाते दूसरों को नीची तथा तुच्छ दृष्टि से देखने का अधिकारी हूं, तो मैं उसे यह परामर्श देता हूं कि वह वृथाभिमान को निकाल बाहिर फेंके।

यदि आप अपने अतीत जीवन तथा गत घटनाओं का पुन: पुन: एकान्त में अवलोकन करते रहें तो आपको अपने दोष दिखाई देंगे। जिन्हें अपने दोष न दिखाई पड़ें और जो अपने आपको सर्वथा दोषरहित समझें उनका सुधार होना कदापि संभव नहीं। जो अपने चरित्र की त्रुटियों को देख सकते हैं, वही अपने चरित्र को सुधार भी सकते हैं। यदि कोई स्वयंसेवक कहे कि उसका चरित्र आज दोषरहित है, अत: उसे अतीत जीवन का निरीक्षण एवं परीक्षण करने की क्या आवश्यकता है, तो ऐसा स्वयंसेवक अपने चरित्र की उन्नति नहीं कर सकता। अत: हम आत्म-निरीक्षण करके अपने सभी दुर्गुणों का मूलोच्छेदन कर डालें और ऐसे गुणों को ही अपनायें, जो हमारे कार्य की वृद्धि के पोषक हों और जिनके कारण लोगों को हम अपनी ओर आकर्षित कर सकें।

यदि हम अपना आचरण इतना शुद्ध रखेंगे तो हमारे मन में शुद्ध विचार अवश्य उत्पन्न होंगे। एक बार शुद्ध विचारों का संचार होते ही

आप से आप हमारे मन में इस प्रकार के प्रश्न उठने लगते हैं—हम कौन हैं ? हमारा कर्तव्य क्या है ? हमें क्या कार्य करना है ? हमने कितना कार्य समाप्त कर लिया है ? उद्दिष्ट तक पहुँचने के लिए हमारे कार्य की गति पर्याप्त है अथवा नहीं ? इत्यादि। मुझे विश्वास है कि यदि सचाई के साथ हम उक्त प्रश्नों के उत्तर अपने मन ही मन देवें तो हमें निश्चय ही प्रतीत होगा कि हम लोग जो कुछ भी कार्य प्रतिदिन करते हैं, वह ध्येय की विशालता का विचार करते हुए, बहुत ही अपर्याप्त है। हमें समस्त संसार को सप्रमाण सिद्ध कर दिखाना है कि हिन्दुस्थान हिन्दुओं का ही है। इस विचार से, हमें कार्य की गति बढ़ा कर कितनी अधिक प्रगति करनी है, इसका विचार आप स्वयं ही करें।

'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है' इस ध्येय-वाक्य की घोषणा संघ पिछले ग्यारह वर्षों से करता चला आया है। अभी तक, विशेषतः संघ के जन्म समय, इस वाक्य का उच्चारण भी महापाप समझा जाता था। तथा लोग इस वाक्य का उच्चारण करने से भी डरते थे। इस वाक्य का उच्चारण सर्व प्रथम संघ ने ही किया; परन्तु संघ में सार्वजनिक मंच पर आकर व्याख्यान देने की प्रथा नहीं है और न समाचार पत्रों में संघ विषयक लेख प्रकाशित किये गए। आधुनिक युग के विज्ञापन के किसी भी साधन का सहारा न लेते हुए, संघ ने न केवल अपने स्वयंसेवकों में ही 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है' यह वाक्य प्रचलित किया, परन्तु इसी के फलस्वरूप उसका प्रचार इतना हो गया; कि आज अनेकों सभामंचो से इस सिद्धान्त की घोषणा सुनने में आती है।

परन्तु इतने से ही हमारा काम पूरा नहीं हो जाता। दुर्भाग्यवश हिन्दुस्थान के लोगों को न तो धर्म की आवश्यकता प्रतीत होती है और न उसके सम्बन्ध मे विचार करने की। यदि वे धर्म, देश आदि के विषय में सोचते; उन्हें संघ का वास्तविक स्वरूप समझने में कोई कठिनाई न हुई होती; परन्तु उन्हें तो धर्म, समाज, राष्ट्र आदि सम्बन्धी विचार तुच्छ जान पड़ते हैं। घर की चार दीवारों के भीतर के जीवन में ही वे लिप्त हैं अतः जब देश में कोई आन्दोलन उठता है, तो वे उसकी ओर मनोरंजन

की वस्तु की दृष्टि से ही देखते हैं। राष्ट्रोत्थान के सम्बन्ध में किए हुए प्रयत्नों को दिल बहलाने का साधन समझने का मूल कारण लोगों की स्वार्थ–वृत्ति ही है। इसी कारण हमारे राष्ट्र में पिछले पचास वर्षों से राष्ट्र–जागृति के अनेकानेक प्रयत्न होने पर भी प्रत्येक शहर या देहात में सार्वजनिक कार्य के लिए उद्यत रहनेवाले कार्यकर्ताओं की संख्या आज भी उंगलियों पर गिनने लायक ही होती है। लोग अपनी स्वार्थ–वृत्ति के कारण ही संघ को समझने में असमर्थ रहते हैं; न तो उन्हें संघ के ध्येय की अनुभूति ही हो पाती है और न वे संघ के विशाल स्वरूप की कल्पना ही कर पाते हैं।

मैंने जो आरम्भ में यह कहा था कि व्यक्ति के चरित्र में कोई भी दोष न हो, वह निष्कलंक हो, और जो यह सिद्धान्त प्रतिपादन किया कि सारे दोष नष्ट करके स्वयंसेवक के शुद्ध चरित्र बनने पर ही कार्य हो सकता है, वे ही सारी बातें 'संगठन' के लिए भी लागू होती है। संगठन तथा संगठन की कार्य–प्रणाली में कोई त्रुटि न रहने पायें। संघ किसी भी कार्य–क्षेत्र में नहीं उतरता, इसीलिए उस पर कोई रंग नहीं चढ़ पाता। संघ पर केवल एक रंग है और वह है संगठन का। यदि हम किसी पक्ष विशेष में अथवा किसी आंदोलन में सम्मिलित हुए, तो निश्चय जानो कि हम पर उनका रंग चढ़े बिना नहीं रह सकता। परन्तु ऐसा कोई अन्य रंग संघ को नहीं लगा लेना है।

संघ की इस अलिप्त वृत्ति के कारण कई लोगों की यह धारणा हो जाया करती है कि संघ कुछ भी ठोस कार्य नहीं करता। उनको इस धारणा के सम्बन्ध में यही कहना पड़ेगा कि वे संगठनशास्त्र का तत्व नहीं जानते। संगठन का चाहे जो उद्देश्य हो, उसमें एक प्रकार की शक्ति हुआ करती है। संगठन में निजी सामर्थ्य के प्रति एक विशिष्ट प्रकार का आत्म-विश्वास हुआ करता है। हमारे आलोचक इस बात का ध्यान रखें कि संगठन का हरएक घटक अपने हृदय की भावनाओं को कार्यरूप में परिणत किये बिना नहीं रह सकता। संघ का प्रत्येक घटक यह भली भांति

जानता है कि दिन के चौबीस घण्टे भी उस कार्य के लिए अपर्याप्त हैं, अत: संघ के कार्य से उसे अन्य काम करने का अवकाश न मिल सके, तो इसमें उसका या संगठन का कोई दोष नहीं।

पिछले पचास वर्षों में राष्ट्र–जागृति के जो प्रयत्न हुए उनसे सब को यह स्पष्टतया प्रतीत हो गया है, कि संगठन का कार्य ही सबसे महत्वपूर्ण है। हमारे प्रत्येक संघ घटक का तो विश्वास ही है कि संगठन के अतिरिक्त, राष्ट्र के सामने और ध्येय रह ही नहीं सकता। इसीलिए संगठन को छोड़ अन्य फुटकर काम–काजों के लिए उसे अवकाश न मिले तो उसे तनिक भी दु:ख नही होता संगठन में असीम सामर्थ्य है, परन्तु उसकी अनुभूति प्रत्येक स्वयंसेवक के मन में होनी चाहिए। हम संगठन करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि अन्य सब कामों की अपेक्षा संगठन ही श्रेष्ठ है।

व्यक्ति के समान ही संगठन भी निर्दोष होना चाहिए। कभी कभी हमें पता भी नहीं चलता कि हमसे कब और कैसे भूल हुई। अतः हमें कार्य करते समय अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए। संघ में आने पर व्यक्ति का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रहता ही नहीं। अतएव स्वयंसेवक को वही काम करना उचित है, कि जिससे संगठन को लाभ पहुँचे। परन्तु इससे यह अभिप्राय नहीं, कि स्वयंसेवक को व्यक्तिशः कोई कार्य करने की मनाई हैं। अपनी निजी जिम्मेदारी पर वह कोई भी कार्य खुशी से कर सकता है। परन्तु वह वही कार्य व्यक्तिशः कर सकता है, जिसका संघ से कोई सम्बन्ध न आता हो। वह उन कार्यों को करे जिनको करते हुए उसकी कृति के कारण संघ को दाग न लगता हो। तथा किसी भी समय संघ का ध्येय उसकी दृष्टि से ओझल न हो। बोलते-चालते, आचार व्यवहार करते, तथा प्रत्येक कार्य करते समय हम सावधान रहें, कि हमारी किसी भी कृति के कारण संघ के ध्येय तथा कार्य को कोई क्षति न पहुँचे।

इस रीति से दोष रहित कार्य करने के लिए शुद्ध चरित्र के साथ साथ आकर्षकता और बुद्धिमत्ता का मणि-कांचन संयोग करना चाहिए। चरित्र, आकर्षकता तथा चतुराई, इन तीनों के त्रिवेणी संगम से ही संघ का उत्कर्ष होता है। चरित्र्य के रहते हुए भी चतुराई के अभाव में संघ-कार्य

नहीं हो सकता। संघ कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए लोग संग्रह के तत्व से पूर्ण परिचित रहें।

आप लोगों में से कितने ही स्वयंसेवक स्कूल अथवा कालिज की शिक्षा समाप्त कर अन्यान्य स्थानों को जावेंगे। वहां आप ही को अगुवा बनकर कार्य करना होगा और कहीं आप अपने कार्य में सिद्धहस्त न रहे तो आपके लिए वहां कार्य करना असम्भव हो जावेगा। अत: अभी से आप संघ-कार्य का अधिक से अधिक अनुभव प्राप्त करलें। अभी जो बातें बतलाई गई हैं, उन्हें पूर्णतया हृदयंगम कर चरित्र-पालन का पूरा-पूरा ध्यान रखें तथा शुद्ध चरित्र में व्यवहार-चातुर्य, आकर्षकता तथा बुद्धिमत्ता का यथोचित योग करें।

१. तत्व और व्यवहार

तत्व और व्यवहार पर विचार करते समय पहले तो ऐसा लगता है कि उनमें पता नहीं कितना अन्तर होता होगा। 'तत्व' शब्द के उच्चारण मात्र से मनुष्य का मन उंची उंची उड़ाने भरने लगता है। सभी समझते हैं कि तत्व माने कोई गहन और उदात्त कल्पना। पर "व्यवहार" शब्द उच्चारण करने पर अपने चारों ओर चलने वाली घटनायें, उठा–पटक, दौड़धूप, विकार, विस्तार, संताप आदि सभी बातें मनश्चक्षुओं के सम्मुख खड़ी हो जाती हैं। वर्तमानकाल में तत्व और व्यवहार के बीच की खाई और भी चौड़ी हो गई है। बड़े बड़े लोग यह कहते हुए सुने जाते हैं कि तात्विक दृष्टि अथवा शास्त्रीय दृष्टिकोण की बात तो केवल दो चार विद्वानों के ही बस की है, जनसाधारण को उसके बारे में माथापच्ची नहीं करनी चाहिये। किन्तु यदि हम थोड़ा विचार करें तो पता चलेगा कि "तत्व" केवल भाषण अथवा हवाई उड़ान की वस्तु न होकर, वह आचरण करने के लिये ही होता है। तत्व का उदय पहले होता है और बाद में कृति को दिशा प्राप्त होती है। "यह तो 'तत्व' की बात हुई। अब आप 'व्यवहार' की बात करिये" इस प्रकार की भाषा बोलने वालों के बारे में यही कहना पड़ेगा कि सचमुच ही उन्होने तत्व को समझा ही नहीं है। क्योंकि जो तत्व आचरण करने

के लिये हैं ही नहीं, उनका उपयोग भी क्या है? जो तत्व कृतिशून्य शब्द जाल मात्र हैं, वे बिलकुल ही व्यर्थ हैं। मानव मात्र के व्यवहार पर जिन तत्वों की कोई छाप नहीं पड़ पाती उन तत्वों को तो "बांझ" की संज्ञा देनी पड़ेगी। किसी विशिष्ट समाज के जीवन क्रम को निश्चित दिशा देने की शक्ति यदि तत्व में न हो तो उस तत्व की कीमत तिनके बराबर भी नहीं होगी। वास्तविकता यह है कि जिस जोश से, अजेय आत्मविश्वास से, तत्व को ग्रहण किया जाता है, उसी से उसे महत्व प्राप्त होता है। तत्व होता है व्यवहार में उतारने के लिए ही। केवल कोरी बकवास के लिये नहीं होता। व्यवहार तो तत्वों का ही अनुसरण करता है। तत्वानुसरण करने वाला जीवनक्रम ही ध्येय पथ की कठिन चढ़ाई चढ़ते समय पथिक को सम्बल प्रदान कर अन्तिम लक्ष तक पहुंचाने में सहायक बनता है। तत्व प्रतिपादन करने वालों के जीवन में कुछ काल तक चढ़ाव-उतार भले ही आवें पर तत्व तो चिरायु होता है।

अनेक लोगों को तत्व, अव्यवहार्य मालूम पड़ते हैं। पग पग पर यह बात अनुभव होती है। किसी का अच्छा आकर्षक भाषण सुनने के बाद लोग अक्सर उसकी प्रशंसा करते हुये कह उठते हैं कि "कितना तात्विक विवेचन किया गया है।" इसका स्पष्ट अर्थ यही होता है कि भाषण देने वाले का कथन सुनने में कितना ही मधुर और मनको कितना ही पसन्द क्यों न लगता हो पर उसे कृति में उतारना संभव नहीं है। वह अव्यवहार्य है, "इम्प्रेक्टिकल" है। इस प्रकार संसार में तत्व और व्यवहार को चाहे जितना भी भिन्न क्यों न माना जाय, पर वास्तविकता वैसी न होने के कारण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उसे भिन्न नहीं मान सकता। संघ में होनेवाले बौद्धिक, काम करने के लिये दी गई सूचनायें अथवा संघ के कार्यक्रम अव्यवहार्य है यह हम कैसे कह सकेंगे?

'जो बोलेंगे वह करके दिखायेंगे' यह हमारी आकांक्षा है। अपने सिद्धान्त और व्यवहारों में हम स्वाभाविक सम्बन्ध मानते हैं। सिद्धान्त और व्यवहार अर्थात विचार और आचार, वचन और कृति–इन दोनों का सुन्दर समन्वय करने की प्रतिज्ञा संघ ने ली है और उसे निभाने का

उत्तरदायित्व स्वयंसेवकों का है। हम जो कुछ बोलते हैं वह व्यवहार्य ही होना चाहिये, जिन सिद्धान्तों का हम प्रतिपादन करते हैं उन्हें आचरण में उतरने के लिये ही प्रतिपादित करते हैं। हमारा तो निश्चित मत हैं कि ये व्यवहार्य होने ही चाहिये। अपने अन्त:करण में हम यह विश्वास रखें कि संघ का कोई भी सिद्धान्त अव्यवहार्य कभी नहीं होगा। किसी को भी संघ की ओर यह कह कर उंगली उठाने का अवसर नही मिलेगा कि " संघ व्यवहार को लेकर नहीं चलता " अथवा " संघ का कार्य और कार्यक्रम तो अव्यावहारिक है " या " संघ अव्यवहारिकता की चरमसीमा पर पहुंचा हुआ है। ' जब सिद्धान्त और व्यवहार मे मेल नहीं बैठता तब निश्चय समझिये कि दो में से किसी एक में अवश्य ही कोई गलती है। या तो विचारों में ही कहीं कोई भूल होगी या फिर आचरण में कहीं दोष होगा। सिद्धान्त और व्यवहार परस्परावलम्बी होते हैं। अतः इस बात का ठीक ठीक पता लगाकर कि भूल कहां हो रही है, तथा उस भूल को सुधार कर अपने आचार विचार में योग्य समन्वय बिठाना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

एक कहावत है कि " बोले तैसा चाले त्याची वन्दावी पाउलें। " (बोले तैसा चाले, वाकें पूजें पाव।) इससे स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति अथवा संस्था में सिद्धान्त और व्यवहार में एकरूपता दिखाई दे— विचार और आचार एक जैसे हों—उसे कितना श्रेष्ठत्व प्राप्त होता है। वही व्यक्ति वन्दनीय और अनुकरणीय माना जाता है जिसके जीवनक्रम का प्रत्येक पग उसके द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों के अनुरूप ही पड़ता हैं। कृति के बिना सिद्धान्त-निष्ठा लंगड़ी हो जाती है ऐसी कोरी गप्पों से अथवा कृतिहीन सिद्धान्तों से न कभी कोई कार्य सम्पादित हो सका है न आगे भी हो सकेगा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को यदि मान्यता प्राप्त करनी है— यदि जनता के मन में उसके कार्य के प्रति आदर निर्माण करना है और यदि संघ का कार्य व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ाने की हमारी आकांक्षा है तो संघ के सिद्धान्त और स्वयंसेवक के व्यवहार में मेल बैठाना ही होगा। संघ-निष्ठा एक सिद्धान्त है। उसकी गहरी छाया व्यवहार पर पड़नी ही चाहिये। इस प्रकार यदि सिद्धान्त और व्यवहार, आचार और विचार,

मंत्र और तंत्र–ये सब एक ही दिशा में आगे बढ़ सके तो सफलता हमारा अनुसरण करेगी।

संघ–हित के लिए, अर्थात् राष्ट्रहित के लिए यह आवश्यक है कि संघ के बारे में सर्वत्र अच्छा वातावरण निर्माण हो। संघ का कार्य कोई साल–छः महिने का ही नहीं है। साथ ही संघ जनता की ओर किसी हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहता। अतः जिस समाज में हमें कार्य करना है, अपने कार्य के विषय में उनकी भावनायें सहानुभूतिपूर्ण बनी रहें यह देखना स्वयंसेवक का प्रमुख कर्तव्य है। अपना कार्य कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो, पर जिन लोगों के बीच हमें कार्य करना है, उनकी ओर, उनके विचार और भावनाओं की ओर हम दुर्लक्ष नहीं कर सकते। यह बात भी नहीं कि हमारा काम बहुत सरल हो। वर्षानुवर्ष कठोर तपस्या करके ही यह कार्य सिद्ध किया जा सकता है। उस अवस्था में यह और भी आवश्यक हो जाता है कि हम चार लोगों के समान ही संसार में रहें और संसार में रह कर ही यह श्रेष्ठ और पवित्र ईश्वरीय कार्य करें।

इन सब बातों को करने के लिये लोगों की भावनायें, उनके विचार आदि का ध्यान रखना अपरिहार्य हो जाता है। चारों ओर के लोग संघ के विषय में क्या सोचते है इस बात को स्वयंसेवकों को प्रयत्नपूर्वक समझ लेना चाहिये और उस दृष्टि से स्वयं का आत्मालोचन करना चाहिये। लोगों के दुराग्रह, संशय, मतभिन्नता आदि का ध्यान रख कर ऐसा व्यवहार करना चाहिये जिससे इन में अच्छी धारणा ही उत्पन्न हो। लोगो से यदि हम अच्छी धारणा या सहानुभूति की अपेक्षा करते हैं तो हमें स्वयं भी तदनुरूप बनना पड़ेगा और अपने अच्छाई की छाप दूसरों पर डालनी पड़ेगी। दोषों की गठरी सिर पर लाद कर, और ऐसा आचरण करते हुये भी कि जिससे लोगों का मन खट्टा हो जाय, यदि हम यह अपेक्षा करें कि लोग हमारे बारे में अच्छी धारणा ही रखें अथवा सहानुभूति रखे तो यह एक प्रकार का पागलपन ही कहा जायगा। संघ निष्ठा का सिद्धान्त, व्यवहार में अवतरित होना चाहिये। सबको संघ का हितैषी बनाने योग्य कृति करने के लिये अपने भीतर संघ-प्रेम

भी उतना ही तीव्र होना चाहिये। संघ के प्रति यदि हमारे मन मे सच्चा प्रेम होगा—उसके सिद्धान्तों ने यदि सचमुच ही हृदय को अभिभूत किया होगा—तो यह संघ-निष्ठा व्यवहार में अवश्य ही उभरकर दिखाई देगी। इस प्रकार अब हम यह विचार करें कि व्यवहार में हम तत्वनिष्ठ कैसे बने? फिर स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उपस्थित होगा कि संघ को लोग अच्छा कहें, संघ के प्रति उनके मन में आदर उत्पन्न हो – इसके लिये हम क्या करें? इसका उत्तर यही है कि संघ के अन्दर ध्येयनिष्ठ किन्तु व्यवहार कुशल लोग हो। प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में भिन्नता होती है। फिर भी सिद्धान्तों के साथ किसी न किसी प्रकार का मेल बिठाना ही पड़ेगा।

संघ में बहुतांश विद्यार्थी ही हैं। ऐसे स्वयंसेवकों का क्या कर्तव्य है और उनका सिद्धान्तों से कैसे मेल बिठाया जा सकता है—इत्यादि बातों का हम विचार करें। ऐसा स्वयंसेवक अपने आदर्श व्यवहार के द्वारा अपने परिवार और माता-पिता के साथ ही समाज को भी सन्तुष्ट रखते हुये संघ का एकनिष्ठ आदर्श स्वयंसेवक बन सकता है। विभिन्न प्रकार के कर्त्तव्यों में वह सामंजस्य बिठा सकता है और ऐसा सामंजस्य निर्माण करना उसका कर्त्तव्य है। विद्यार्थी और स्वयंसेवक इन दोनों दृष्टियों से उसे आदर्श बनना होगा। विद्यार्थी के व्यवहार का प्रथम कर्त्तव्य है अध्ययन। अपने अध्ययन में किंचित् भी कमी न करते हुये जमकर पढ़ना—पाठचपुस्तकों के अतिरिक्त अन्य साहित्य का भी अध्ययन करना – अपने ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार करना तथा ठोस नीव पर अपने विचारों को अधिष्ठित करना – सब बातें विद्यार्थी के नाते उसके कर्त्तव्य बन जाती हैं। विद्यार्थी होने के कारण उसे यह सब कर्त्तव्यपूर्ण करना ही चाहिये और ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे सभी के मुख से ये समाधानकारक शब्द सुनाइ पड़े कि "संघ में भेजने से लड़के ऐसे आदर्श छात्र बनते हैं।" इस प्रकार विद्यार्थी अवस्था में ज्ञानार्जन करते समय, अन्य विद्यार्थी, मित्र, आचार्य, पड़ौसी इत्यादि जिन जिन लोगों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता हैं उन सब के साथ अत्यन्त सौजन्य और आत्मीयता का व्यवहार करते हुये उनका हृदय जीतना

चाहिये। पर ऐसा करते समय किसी भी कारण अपने स्वाभिमान को तिलांजलि देने की कतई आवश्यकता नहीं है। संघ का विद्यार्थी स्वयंसेवक यदि इस प्रकार का व्यवहार करे तो लोगों का मन अपने आप ही उसकी ओर आकृष्ट होगा और पर्याय से जिस बड़े संगठन के आप सदस्य हैं– उसके प्रति भी आदर निर्माण होगा।

यदि संक्षेप में कहा जाय तो स्वयंसेवक की व्यवहार–कुशलता से मित्र मंडली, माता–पिता, सगे–सम्बन्धी और अध्यापक वर्ग के मन में उसके प्रति स्नेह निर्माण होता है। समवयस्कों के लिये वह आदर्श बन जाता है और उसे वे आदर की दृष्टि से देखने लगते हैं। जो जो लोग उसके निकट सम्पर्क में आयेंगे, उनके मन पर उसके सद्‌गुणों की छाप पड़ेगी और वे उसका अभिन्दन करेंगे। संघ के संगठन का एकनिष्ठ सदस्य होने के कारण लोग निश्चितरूप से यह सोचने के लिये बाध्य होंगे कि ये सब बाते संघ के कारण ही इसमें आ पाई हैं तथा संघ के संगठन में भाग लेने के कारण ही यह इतना गुणवान बन पाया है। इस प्रकार संघ के सम्बन्ध में भी उनके मन में प्रेम व आदर का भाव निर्माण होगा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यार्थी के व्यवहार का संघ के कार्य पर कितना व्यापक परिणाम पड़ता है। उसकी अच्छाई से संघ की अच्छाई सिद्ध होगी और उसके द्वारा अर्जित लोगों की सहानुभूति संघ कार्य की वृद्धि में पर्याप्त सहायक होगी।

स्वयंसेवक के अच्छे या बुरे कार्य अथवा व्यवहार पर ही संघ की उन्नति अथवा अवनति अवलम्बित है। स्वयंसेवक की प्रशंसा मे संघ का और उसके उत्कर्ष में संघका उत्कर्ष सन्निहित है। पर साथ ही, संघ के स्वयंसेवक की उत्तरदायित्वहीनता अथवा उसके बारे में अनादर उत्पन्न करने वाला व्यवहार, संघ के लिये भी घातक सिद्ध होता है। अतः यदि स्वयंसेवक सचमुच संघ को समझ गया है—यदि उसकी यह मनीषा है कि "संघ कार्य बढ़े और मैं अधिक से अधिक कार्य करूं" तो उसके लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति इस नाते वह संघ के सिद्धान्तों के अनुरूप ही आचरण करें।

हमें एक प्रभावी तेजपुंज जैसा संगठन निर्माण करना है। संघ को स्थिरता प्रदान कर उसे वृद्धिगत करना है। यदि हम सचमुच ही ऐसा करना चाहते हैं तो हम संघ के स्वयंसेवकों को तत्वनिष्ठ रहते हुये व्यवहारकुशल भी होना पड़ेगा। इसके लिये हमें अपना विद्यार्थी जीवन पूर्ण रूप से सफल बनाकर दिखाना होगा। विद्यार्थी यदि अपना अध्ययन ठीक प्रकार से करता है—प्रेम और सौजन्यपूर्ण व्यवहार करता है, घर के सब काम व्यवस्थित रूप से समय पर करता है और संघ के सिद्धान्तों का विस्मरण न करते हुये संघ का कार्य भी करता है तो कौन ऐसे माता-पिता या अभिभावक होंगे जो उससे अप्रसन्न रहें ? किन को उससे मैत्री बढ़ाने की इच्छा न होगी ? क्या किसी अध्यापक को उसके प्रति अनादर होना सम्भव भी हो सकेगा ? सभी के लिये वह प्रिय, आदर्श व प्रशंसनीय होगा और संघ विषयक स्तुति-पराग से चतुर्दिक का वातावरण सुरभित हुये बिना न रहेगा।

संघ कार्य के अनेक पहलू हैं। स्वयं की जिम्मेदारी पहचान कर तदनुरूप व्यवहार करना भी संघ कार्य ही है। अपने किसी कार्य का, अथवा जो पग हम आगे बढ़ाने जा रहे हैं, उसका संघकार्य पर क्या परिणाम पड़ेगा—यह विचार करके ही हम किसी कार्य में हाथ डालें। यदि इस दृष्टि से विचार करके जीवन का प्रत्येक पग आगे बढ़ा तो अपने द्वारा संघ के लिये पोषक कार्य ही सम्पन्न होंगे—उसके विपरीत कोई कार्य कभी नहीं होगा। विचारों की यह गंभीरता और व्यवहार कुशलता सम्पादित करने के लिये एक बात प्रमुख रूप से आवश्यक होती है और वह है "योग्य मनोवृत्ति"। इस मनोवृत्ति का निर्माण सरल है। सदैव अपने अन्तःकरण में संघनिष्ठा जागृत रखकर हम व्यवहार करें तो यह मनोवृत्ति स्वाभाविक रूप से हमारे अन्दर निर्माण होगी। अपना तन-मन-धन सब कुछ संघ का ही है। अतः संघ की यह स्वाभाविक अपेक्षा होगी कि संघ का कोई स्वयंसेवक संघ कार्य के लिये अहितकर ऐसा कोई भी व्यवहार न करें। पग पग पर यह विचार करते हुये कि अपनें कार्य का संघ पर क्या परिणाम पड़ेगा, ध्येयनिष्ठ रहते हुये, व्यवहार-कुशलता सम्पादित

करनी चाहिये और मन में यह धारणा रहनी चाहिये कि इसी प्रकार संघ के कार्य का स्थायी विकास सम्भव हो सकेगा।

कई बार अभिभावकों की यह शिकायत रहती है कि "संघ के कारण लड़के घर की ओर दुर्लक्ष करते हैं – उद्दण्ड बनते हैं – अध्ययन की ओर ध्यान नहीं देते।" संघ ऐसी गलत बातें करने का आदेश कैसे दे सकता है ? वास्तविकता तो यह है कि स्वयंसेवक केवल एक घण्टा ही संघ में आता है और उसके शेष तेईस घण्टे तो बाहर ही व्यतीत होते हैं। इस एक घण्टे की अवधि में संघ अपने सांचे में ढालकर उसे सुधारने का प्रयास करता है। पर जिम्मेदारी न अनुभव करते हुये कई स्वयंसेवक अकारण ही अपना पर्याप्त समय इधर उधर गप्प मारने या घूमने फिरने में गवां देते है। इसी कारण संघ के सम्बन्ध में अभिवावकों के मन में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। उन्हें लगाता है कि लड़का आठों पहर संघ में ही रहता है – वह बिगड़ गया है और उस पर संघ का पागलपन सवार हो गया है। संघ का पागलपन तो स्वयंसेवक पर सचमुच ही सवार होना चाहिये। पर वह पागलपन कुछ और ही प्रकार का रहता है। ऐसा अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार संघ का पागलपन नहीं है। संघ का पागलपन तो बहुत ही उदात्त होता है। जिस पर संघ का पागलपन सवार हो जाय ऐसा व्यक्ति सिद्धान्त और व्यवहार में न कभी भेद होने देगा न अपने हाथ से ऐसा ही कोई कार्य होने देगा जिससे उसके या संघ के उपर आँच आवे।

सारांश यह कि संघ हित की दृष्टि से प्रत्येक स्वयंसेवक का व्यवहार अतीव दक्ष होना चाहिये। कोई एक व्यक्ति फिर चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो संघ का यह महान् कार्य एकाकी नहीं कर सकता। सिद्धान्त को जीवन में उतारने वाले और उत्तरदायित्व का अनुभव करने वाले हजारों, लाखों व्यवहारकुशल तरुण सहयोगियों के बल पर ही यह पूरा हो सकेगा। यह संघ मेरा है, उच्च सिद्धान्तों के आधार पर ही यह प्रगति करेगा तथा लोकसंग्रह हमारा सर्वोत्कृष्ट तत्व है यह धारणा अहोरात्र अपने अन्तःकरण में जागृत रख कर ही स्वयंसेवक का आचरण होना चाहिये।

इन सब बातों का यह अर्थ नही लगाना चाहिये कि संघ कार्य गौण है और अपने चारों ओर के समाज या अभिभावकों की खुशामद करना ही धर्म है। यह तो ठीक है कि अपने उत्तम व्यवहार के द्वारा संघ का स्वयंसेवक सब को संतुष्ट करें पर उसके कारण संघ कार्य में किसी भी प्रकार की बाधा कभी भी उत्पन्न नहीं होने देनी चाहिये। तत्वनिष्ठा और व्यवहार में समन्वय बिठाते समय प्रवाह में बह जाने की और मन को यह धोका देने की संभावना रहती है कि यह सब हम संघ के लिये ही कर रहे हैं। ऐसी प्रवंचना से सभी को बचना चाहिए। "घर का कामकाज पूरा करने के हेतु यदि संघ कार्य में कुछ कमी आ जाय तो भी कोई हर्ज नहीं" अथवा "अपने इष्टमित्रों को संतुष्ट करने के लिये केवल खाली समय में ही संघ-कार्य करना चाहिये" ऐसा भ्रम निर्माण होना भी सम्भव है। पर "संघ-कार्य ही मेरे जीवन का सर्वप्रधान कार्य है" यह दृढ़ धारणा अपने अन्तःकरण में धारण करके ही जीवन के सब व्यवहार करने चाहिए। अन्यान्य व्यवहार कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो पर उसे संघ-कार्य की अपेक्षा अधिक महत्व देना कभी भी उचित नहीं होगा। व्यवहार कुशलता का अर्थ यही है। हमें संघ का कार्य करना है उस में किसी प्रकार का गतिरोध न आये इसी दृष्टि से समस्त व्यवहार परिचालित करने हैं। उदाहरणार्थ विद्यार्थी यदि ठीक प्रकार से अध्ययन करता है और घर के काम यथा समय कर डालता है तो वह अधिक स्वतंत्रतापूर्वक संघ-कार्य की ओर ध्यान दे सकेगा। किसी भी प्रकार संघ कार्य न बिगडे अथवा उसमें कोई गतिरोध उत्पन्न न हो इसी बात पर हमारी दृष्टि केन्द्रित होनी चाहिए। अपने व्यवहार कुशलता की कसौटी यही है कि हम स्वयं संघ कार्य उत्तम रीति से कर सकें, अन्यों के लिये भी कार्य करने योग्य अनुकूल परिस्थिति निर्माण कर सकें, और यथा सम्भव संघ के सम्बन्ध में अच्छी धारणा उत्पन्न कर सकें। बहुतेरे लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि संघ का कार्य श्रेष्ठ है अथवा पारिवारिक कार्य ? इसका उत्तर यही है कि यथासंभव पारिवारिक कार्यों में तथा संघ के कार्य में किसी प्रकार का विरोध उत्पन्न नहीं होने देना चाहिए। घर के कामकाज का समय संघ कार्य के समय से अलग रखना चाहिए। साथ ही

अधिकाधिक समय संघ कार्यार्थ देने का प्रयास करना चाहिए। परन्तु घर का सब काम व्यवस्थित रूप से सम्पादित करने के बाद भी यदि अभिभावक संघ कार्य मे रुकावट डाले तो उन्हें स्पष्ट रूप से बताना होगा कि अन्य सब समय में घर का कार्य अवश्य करूंगा पर संघ के कार्य के लिए मुझे अलग समय अवश्य चाहिए। उस अवधि में घर का कार्य करना मेरे लिए संभव नहीं है, क्योंकि संघ कार्य कभी भी गौण नहीं हो सकता। "सरकारी नौकरी करें या न करें?" ऐसा प्रश्न पूछने वालों के लिए भी सीधा उत्तर यही है कि वह अपना स्वाभिमान और संघनिष्ठा कायम रखते हुए उत्तर देने की सिद्धता रखे। सरकारी नौकर होने का यह अर्थ कदापि नहीं कि उसने अपने धर्म से भी नाता तोड़ लिया हो। धर्म और समाज से संबंधित कर्तव्यों से तो वह सदा बंधा ही रहता है। सरकारी नौकरी करने के पूर्व भी वह हिन्दू रहता है और नौकरी करने के बाद भी वह हिन्दू ही रहता है। हिन्दू की सेवा करने के उत्तरदायित्व के प्रति वह उदासीन नहीं हो सकता। उसे भी संघ कार्य करना ही चाहिये और उसके लिए चाहे जो कष्ट उठाना पड़े—यहां तक कि नौकरी को भी ठोकर मारनी पड़ी तो उसे पीछे नहीं हटना चाहिए। हमें आमरण, अर्थात् जन्मभर, निस्वार्थ बुद्धि से तन मन धन पूर्वक संघ कार्य करना है। हमारा अपना स्वयं का तो कुछ भी शेष नहीं है। सब कुछ संघ का हो चुका है। अतः संघ कार्य में सहायक होने वाले कार्य ही हमारे द्वारा होने चाहिए। संघ कार्य एक श्रेष्ठ सिद्धान्त है और उस सिद्धान्त पर हमारी आत्यन्तिक निष्ठा है। अतः संघ कार्य में अभिभावक अथवा नौकरी से कोई अड़चन उपस्थित हो तो उस अड़चन को दूर हटा देना, स्वयंसेवक के नाते हमारा कर्त्तव्य हो जाता है।

संघ से प्रेम रखने वाले अभिभावकों के साथ स्वयंसेवक को सौजन्यता पूर्ण व्यवहार ही करना चाहिये। संघ के प्रति सहानुभूति रखने वाले तथा "अपना लड़का पूर्ण रूप से संघ कार्य में ही रत हो जाय तो भी कोई बात नहीं" ऐसा विचार रखने वाले अभिभावकों को यदि कोई कष्ट दे तो वह सदैव अक्षम्य ही कहा जायगा। पढ़ाई तथा घर के अन्यान्य कार्यों के बारे में अभिभावकों की अपेक्षाएँ पूर्ण करने में ही संघ का

हित है यह बात स्वयंसेवकों को कभी भी आंख से ओझल नहीं होने देनी चाहिये ।

संघ कार्य, यह एक पवित्र कार्य है और तद्विषयक हमारी निष्ठा अपने सम्पूर्ण आचार विचार में ओतप्रोत होनी चाहिये । हम ईमानदारी से यह कह सके कि हमारी प्रत्येक कृति संघ कार्य की दृष्टि से ही होती है । जिन्हें जीवन भर केवल संघ कार्य ही करना है उन्हें भी अध्ययन तो करना ही चाहिये और संघ का कार्य करने के लिये योग्यता और अधिकार सम्पादित करना चाहिये । संघ के लिये ही पढ़ाई,–संघ के लिये अनुकूल परिस्थिति निर्माण हो सके इसी दृष्टि से ही घरका काम–किंवहुना संघ कार्य करने के लिये शक्ति और उत्साह प्राप्त हो इसी हेतु भोजन और शयन–इस वृत्ति से व्यवहार करने वाला स्वयंसेवक ही आदर्श बन सकेगा । हमारे सभी व्यवहारों को संघ निष्ठा के पवित्र तत्वज्ञान का अधिष्ठान प्राप्त हो तभी इन व्यवहारों को भी पावित्र्य और उदात्तता प्राप्त होगी । हमारी विशेषता इसी में है कि हमारा प्रत्येक कार्य संघकार्य की ईश्वरी प्रेरणा से सम्पन्न होते हैं । इस प्रेरणा के अभाव में हममें और मनुष्येतर प्राणियों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जायगा । इतनी ऊची मनोभूमिका से व्यवहार करने की आदत डालनी चाहिये । अकारण किसी के अन्दर कोई भ्रम पैदा न करते हुये संघ कार्य के लिये पर्याप्त समय मिल सके, इस प्रकार का व्यवहार करने की कुशलता सतत प्रयत्न से प्राप्त करना प्रत्येक के लिये सम्भव है । सच पूछा जाय तो पढ़ाई या परिवार के कार्य का बोझ इतना अधिक कभी नहीं होता कि संघ कार्य के लिए समय ही न मिल सके । इसके बाद भी यदि ऐसा कोई प्रसंग उपस्थित होता ही है तो संघ कार्य के सम्मुख अन्य सब बातें गौण हैं यह अन्तिम निर्णय है । घरका काम, पढ़ाई, दुनियादारी, नौकरी अथवा स्वास्थ्य या आर्थिक लाभ इत्यादि बातें संघ से श्रेष्ठ नहीं है । यह धारणा मन में इतनी दृढ़ होनी चाहिये कि यदि कभी किसी प्रकार के मोह का प्रसंग उपस्थित हो तो उसे ठोकर मारकर हम एक ओर कर सकें । संघ के प्रति आत्यन्तिक निष्ठा और विचारशृद्धता के साक्षात्कार से अन्तःकरण इतना दृढ़ और प्रभावी बनना चाहिये कि जिसके सम्मुख कोई भी मोह या विकार जल

कर खाक हो जाय। यह बात इतनी सरल नहीं है। उसे सम्पादित करने के लिये कठोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। ऐसी तपश्चर्या विद्यार्थी अवस्था में ही सुलभ होती है। संघ कार्य को जीवन का प्रमुख कार्य समझकर अपने जीवन के सम्पूर्ण व्यवहार विद्यार्थी अवस्था से ही उस धारणा के अनुरूप ढालने का अभ्यास करना चाहिये।

स्वयंसेवक ऐसा ही काम करें कि जो संघ के लिये पोषक सिद्ध हो। ऐसा ही उद्योग करें कि संघ कार्य का पग आगे ही आगे बढ़ता रहे। "नारायणीं घडे जेणे, अन्तराय हो का बाप माय त्यजावीतें" * सन्त तुकाराम का यह वचन स्वयंसेवक की आदर्श मनोवृत्ति का ही द्योतक है। संघ कार्य में बाधा उत्पन्न करने वाली प्रत्येक बात को ठोकर मारने योग्य मन की दृढ़ता स्वयंसेवक की होनी ही चाहिये।

सारांश यह कि संघ के अन्दर तत्त्वनिष्ठ और व्यवहार-कुशल लोग ही बढ़ने चाहिये। सिद्धान्त और व्यवहार के सम्बन्ध में ही उन्नति के बीज निहित हैं। संघ निष्ठा और लोक-संग्रह ये दोनों संघ के प्रमुख तत्त्व हैं। ऐसी अवस्था में इन दोनों तत्वों का परिपालन होना ही चाहिये। फिर उसके लिये हमें चाहे जितना भी कष्ट उठाना पड़े, अथवा कितनी भी झंझटों का सामना करना पड़े—यह त्याग करने के लिये हमें सिद्ध होना ही पड़ेगा। त्याग ही सफलता की कुंजी है। उन्नति के लिये त्याग के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। हमारे त्याग पर ही संघका भविष्य अवलंबित है। हम कितने नादान हैं कि किसी प्रकार का स्वार्थत्याग न करते हुए भी कार्य की सिद्धि की अपेक्षा करते हैं। परन्तु यह बात सर्वथा असम्भव है। त्याग के बिना कभी फल नहीं मिलता। त्याग में ही सच्चा सुख है। त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। बिना त्याग किये ही मुफ्त का बड़प्पन पाने का कोई मार्ग संघ के पास नहीं है। त्याग के रास्ते पर यदि हम लड़खड़ा गये और संघ कार्य पिछड़ गया तो हम महान् अपराधी सिद्ध होंगे।

---

* जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटी वैरी सम जद्यपि परम सनेही।
—गोस्वामी तुलसीदास

६. संगठन की महिमा और तंत्र

संगठन ही राष्ट्र की प्रमुख शक्ति होती है। संसार में कोई भी समस्या हल करनी हो तो वह शक्ति के बल पर ही हल हो सकती है। शक्तिहीन राष्ट्र की कोई भी आकांक्षा कभी भी सफल नहीं होती। परन्तु सामर्थ्यशाली राष्ट्र; चाहे जब, कोई भी कार्य, अपनी इच्छानुसार कर सकता है। किसी श्रीमान् मनुष्य का उदाहरण लीजिए। वह जब भी चाहे, अपनी इच्छा पूर्ण कर सकता है। यदि वह दिव्य भवन बनवाना चाहे तो शीघ्र बनवा सकता है। उसको यह नहीं सोचना पड़ता कि पहले पैसा कमालूं, श्रीमान् हो जाऊं, और फिर भवन बनवाऊँ। भवन तैयार हो जाने पर यदि उसको इच्छा हुई कि सुन्दर सी फुलवारी भी इस भवन के आसपास हो, तो वह भी शीघ्र तैयार हो जाती है। प्रत्येक कार्य के लिये उसे पग पग पर रुकना नहीं पड़ता। ठीक यही बात शक्तिशाली राष्ट्र के लिए भी घटित होती है। सारे प्रश्नों तथा समस्याओं का अन्तिम उत्तर शक्ति ही है। शक्ति न हो तो तुम्हारी पुकार पर कोई ध्यान न देगा और न कोई तुम्हारी चिन्ता ही करेगा। कारण वे जानते हैं कि यह दुबला जीव हमारा क्या बिगाड़ सकता है।

केवल मनुष्य ही नहीं, पशु भी शक्ति का महत्व भली भांति जानते हैं। सिंह को 'जंगल का राजा' कहते हैं। उसे देखते ही अन्य सारे पशुओं के होश उड़ जाते हैं। यथार्थ में सिंह ने अपने विषय में यह कभी प्रचार नहीं किया था, कि उसको ही राजा बना दिया जाय। फिर भी सारे जीव आपही आप मानते हैं कि वह बनराज है। छोटे–मोटे जीव तो सिंह से डरते ही हैं, परन्तु अरण्य में रहने वाले बड़े बड़े क्रूर जन्तु भी सिंह की गर्जना मात्र सुनकर भाग खड़े होते हैं। बिना ढिंढोरा पीटे ही सारे पशु सिंह की शक्ति से परिचित हैं, जिससे साफ पता चलता है कि संसार में वास्तविक महत्व शक्ति का ही है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने ठीक इसी बात को पहिचान लिया है। संघ ने न तो कोई नई वस्तु निर्माण की है और न उसको किसी नये कार्य के करने का अभिमान ही है। जिस बात को हम भूले जा रहे थे, उसका पुनः स्मरण कराने का कार्य संघ कर रहा है।

संसार में शक्ति की ही महत्ता है इस सिद्धान्त को संघ ने समझ लिया है। इसीलिए शक्ति के आधार पर संघ ने यह संगठन खड़ा किया है। संघ राजनीति में भाग नहीं लेता, इसलिए लोग संघ को दोष देते हैं, परन्तु पराधीन राष्ट्र के लिए किसी प्रकार की राजनीति हो ही नहीं सकती, और इसीलिए हमारा राजनीति से सम्बन्ध होने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता। हमें राजनैतिक बातों से करना ही क्या है? संघ तो केवल 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का' इस ध्येय-वाक्य को सच्चा कर दिखाना चाहता है। हिन्दुस्थान देश केवल हिन्दुओं का ही है। दूसरे देशों के समान, यह हिन्दुओं का होने के कारण, संघ यह मानता है कि इस देश में हिन्दू जो करेंगे, वही पूर्व-दिशा होगी। यही एक बात है जो संघ जानता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए और किसी भी पचड़े में पड़ने की आवश्यकता नहीं।

संघ ने जो यह सिद्धान्त जनता के सम्मुख रक्खा है, उसकी अब पूर्ण रूपेण विजय हो चुकी है। कल ही की बात है; यही के नगर-भवन की सभा में मथुरा में दो कसाईखानों के खुलने की निन्दा करते हुए हमारे एक कट्टर कांग्रेसी भाई ने साफ साफ शब्दों में भरी सभा में कहा—'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का ही राष्ट्र है।' उन्होंने तीन बार उपर्युक्त वाक्य का उच्चारण किया और तीनों बार उसपर तालियाँ बजीं। इससे पता चलता है कि संघ किस प्रकार विजयी हो रहा है। उसी प्रकार गत सप्ताह में नागपुर के दो प्रसिद्ध हाई-स्कूलों के वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर अध्यक्षीय अभिभाषण देते हुए लोकनायक बापूजी अणे ने भी यही विचार प्रगट किये। आपने सारांश रूप में यह कहा था कि विद्यार्थियों का कर्तव्य है कि वे जिस राष्ट्र में रहते हैं उसकी तथा अपने धर्म और सभ्यता की रक्षा करने की शिक्षा प्राप्त करें। मुझे इस बात की परवाह नहीं (वे बोले) कि परीक्षा में विद्यार्थी कितने नम्बर पाता है; परन्तु संसार के कार्यक्षेत्र में उतरने पर वह क्या करता है, इसी बात से मुझे मतलब है। देश के नवयुवकों में आत्मसम्मान की भावना जागृत कर, देश, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा करनेवाला तथा एक नेता की आज्ञा में एक अनुशासन के साथ-कार्य करने वाला, शक्तिशाली



संगठन राष्ट्र के अन्दर अवश्य होना चाहिये। व्याख्यान के अन्त में संघ का नामोच्चारण करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह भी कहा कि "आज यदि मैं युवक होता, तो पहिले अपने को इस संघ में भर्ती करवा लेता।" इससे पता चलता है कि देश के विचारशील पुरुषों को संघ के इस संगठन की महत्ता अब प्रतीत हो रही है। यह हो सकता है कि पहिले-पहिले जनता संघ को न समझी हो। किन्तु अब धीरे-धीरे उसे यह जँचने लगा है कि संगठन ही राष्ट्र की एक मात्र शक्ति होती है। अतः हमें स्वयंसेवकों की संख्या द्रुत-गति के साथ बढ़ानी होगी। अंग्रेजी में कहावत है "To Catch time by forelock" अर्थात् अवसर प्राप्त होने पर उससे लाभ उठाने में तनिक भी देर न करनी चाहिये। यह बात अतीव महत्व की है। हम अपने जीवन का कितना ही महत्वपूर्ण समय योंही गँवा देते हैं। कल्पना कीजिये कि आप सब लोग सौ साल तक जीने वाले हैं। आपकी आयु जब दस वर्ष की होती है तो आपकी शेष आयु रहती है केवल ९० वर्ष की। जैसे जैसे आपकी अवस्था बढ़ती जाती है, वैसे वैसे आपकी शेष आयु में कमी होती जाती है। याद रखिये वह बढ़ती नहीं। संघके स्वयंसेवक को चाहिए कि अपने बहुमूल्य जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ न गवाँते हुए, संघ ने जो महान् ध्येय हमारे सामने रखा है, उसे पूर्ण करने के लिए वह सदा प्रयत्नशील रहे। यदि हमारी संख्या पर्याप्त मात्रा में न बढ़ी तो वह कार्य, जो हमें करना है, हम न कर सकेंगे। हमें तो यह कार्य करना है समूचे राष्ट्र का, न कि किसी एक व्यक्ति का। अतएव हमें कार्य की वृद्धि इतने परिमाण में करनी होगी जो संघ के 'राष्ट्रीय' नाम को चरितार्थ कर सके।

पर केवल संख्या बढ़ाने से ही कार्य न चलेगा; स्वयंसेवकों में कार्य शक्ति के साथ-साथ कार्य-कुशलता का होना भी आवश्यक है। सब कामों में एक-एक पग क्रम-बद्ध उठाते हुए आगे बढ़ना चाहिए। हम प्रत्येक स्वयंसेवक का चरित्र-गठन संघ की दृष्टि से कर सकें। वह प्रतिदिन क्या करता है? उसके भाव दृढ़ होते जा रहे हैं अथवा नहीं? यह अपने

८

मित्रों को संघ में लाता है या नहीं ? आदि सब छोटी–मोटी बातों में यदि आप सचेत रहें, तो क्या कार्य–वृद्धि असम्भव है ? संघ का कार्य स्वयंसेवक के मन में ठीक–ठीक जँच गया है अथवा नहीं ? यदि जँच गया है, तो वह उसके अनुसार बर्ताव करता है या नहीं ? और यदि करता भी हैं, तो कितने प्रमाण में करता है ? आदि सारी बातें देखनी चाहिए। प्रत्येक स्वयंसेवक के किये हुए कार्य का ठीक–ठीक मूल्य–मापन हम कर सकें। यह कभी न हो कि कोई स्वयंसेवक आज अच्छी तरह काम कर रहा है और कल अपने घर चुपचाप बैठ जाता है। हमे इस ओर भी ध्यान देना चाहिए कि किसी भी कारण से क्यों न हो, स्वयंसेवक अकर्मण्य न होने पावे। यदि किसी दिन कोई स्वयंसेवक शाखा में उपस्थित न रहा, तो तुरन्त उसके घर पहुँचकर वह क्यों नहीं आया इस बात की पूछताछ करनी चाहिए। नहीं तो दूसरे दिन भी वह स्वयंसेवक शाखा में न आवेगा। तीसरे दिन उसको संघ स्थान पर जाने में संकोच होगा। चौथे दिन उसको कुछ डर सा मालूम होगा। और पांचवे दिन से वह टालमटोल भी करने लग जायेगा। अतः किसी भी स्वयंसेवक को शाखा से अनुपस्थित न रहने देना चाहिए।

एक गांव में एक से अधिक उपशाखाएँ खोलने का भी यही कारण है जिससे स्वयंसेवकों का ठीक प्रकार से विभाजन होकर उनके साथ कार्यवाह का निकट परिचय तथा सम्बन्ध बढ़ता जाय। केवल एक ही शाखा के रहने से बढ़ती हुई संख्या की ओर पूरा ध्यान देना असंभव हो जाता है, जिसका परिणाम यह निकलता है कि संख्या तो बढ़ जाती है, परन्तु शक्ति नहीं बढ़ती। शाखा का कार्यवाह इस दृष्टि से कार्य करे, तभी संघ का स्वीकृत ध्येय सफल होगा। आपके व्यवहार में शुद्धता एवं दक्षता होने पर स्वयंसेवकों की निष्ठा (intensity) स्वयं ही बढ़ती चली जावेगी। एक ही गाँव के भिन्न–भिन्न मुहल्लों में उपशाखायें चलाने से कुछ स्वयंसेवकों के अन्दर गुट्टबाजी के अनुचित भाव पैदा हो जाने की सम्भावना होती है, जिसको हमें कुशलतापूर्वक रोकना होगा। इस बात की ओर हमारा विशेष ध्यान रहे कि स्वयंसेवकों के मन में केवल किसी व्यक्ति

विशेष के विषय में ही श्रद्धा अथवा भक्ति उत्पन्न न हो। स्वयंसेवकों में परस्पर श्रद्धा तथा प्रेम तो अवश्य चाहिए, किन्तु वह प्रेम कार्य के लिए हो, न कि केवल व्यक्ति के लिए। केवल व्यक्ति के लिए भक्ति तथा प्रेम होना, संगठन के लिए हानिकारक है। स्वयंसेवक केवल संघनिष्ठ हों, न कि व्यक्ति–निष्ठ, शाखा–निष्ठ अथवा स्थान–निष्ठ। हमें सावधान रहना चाहिए कि यह विघातक बात कभी न होने पावे। खूब याद रखो कि ये सारी बातें जो मैं कह रहा हूं, संगठन के लिए अत्यावश्यक हैं। इस बात की ओर ध्यान देते हुए कि जब तक हिन्दुस्थान में हिन्दु व्यक्ति को मनुष्य के नाते सम्मान के साथ जीवित रहने का अधिकार प्राप्त नहीं होता, तब तक वह यह नहीं कह सकता कि मैं संगठन के अन्दर प्रवेश कर, अपने लिए निजी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा रखूं। प्रत्येक अधिकारी तथा शिक्षक को सोचना चाहिए कि उसका वर्ताव कैसा रहे और स्वयंसेवकों को कैसे तैयार किया जाय। स्वयंसेवकों को पूर्णतया संगठन के साथ एकरूप बनाकर उनमें से प्रत्येक के मन में यह विचार भर देना चाहिए कि मैं स्वयं ही संघ हूं। प्रत्येक व्यक्ति की आंखों के सामने ध्येय का एक ही तारा सदा जगमगाता रहे, जिस पर उसकी दृष्टि और मन पूर्णतया केन्द्रित हो जायँ। मैं पुनः पुनः कहूंगा कि यदि व्यक्ति प्रेम संघ–कार्य में बाधा उपस्थित करता है तो उस स्वार्थी प्रेम को एकदम दूर हटा दो। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति–प्रेम को समूल नष्ट कर दो।

हम लोगों को सदा सोचना चाहिये, कि जिस कार्य को करने का हमने प्रयत्न किया है और जो उद्देश्य हमारे सामने हैं, उसको प्राप्त करने के लिये हम कितना कार्य कर रहे हैं; और जिस गति से तथा जिस परिमाण में हम अपने कार्य को आगे बढ़ाते जा रहे हैं, क्या वह गति या परिमाण हमारे कार्य की तुलना में पर्याप्त हैं? क्योंकि हमें तो उन्हीं साधनों तथा मार्गों से काम लेना है, जिससे हमारा कार्य शीघ्रातिशीघ्र पूरा हो सके। नहीं तो हमारा उद्देश्य कदापि सिद्ध न होगा। जो उद्देश्य हमने अपने सामने रखा है उसे प्राप्त करने के लिए न जाने हमें कितनी शक्ति का संचय करना होगा। उस शक्ति–संचय के लिए हमें अपने

कार्य की गति खूब बढ़ानी होगी। अतः प्रत्येक को अतीव त्याग करने की तैयारी कर लेनी चाहिये।

आप जानते हैं कि संघ ने इहलोक के सर्वोच्च कार्य को करने का निश्चय किया है। हमें यह नहीं सोचना हैं कि हमारे मर जाने के पश्चात् हमको स्वर्ग कैसे मिलेगा, अथवा हमें वहाँ कौन से सुख मिलने वाले हैं। संघ का कार्य तो हमको इसी जीवन में संपन्न करना है। और इसीलिये संघ ने सांसारिक ध्येयों में सर्वोच्च ध्येय को प्राप्त करने का निश्चय किया है इस बात को हम कभी न भूलें। प्रारम्भ में बतलाया गया है कि जैसे कोई श्रीमान् मनुष्य अपनी इच्छानुसार सुख साधन निर्माण कर सकता है, वैसे ही संगठन की बात है। ऐसी कोई भी राष्ट्रीय आकांक्षा नहीं, जो संगठन के द्वारा प्राप्त न हो सके। हम लोग हमेशा राष्ट्रीयता की दृष्टि से ही विचार करते हैं। चौबीसों घण्टे वही राष्ट्रीयता के विचार हमारे मनों में गूंजते रहें, इसीलिये संघ का नाम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ रखा गया है। जिन महानुभावों को जरा भी संदेह हो कि संगठन से आखिर कुछ काम बनता है, अथवा नहीं उन्हें मैं दावे के साथ जता दूं कि संसार में संगठन ही ऐसी एकमात्र शक्ति है जिसके बल पर सारी राष्ट्रीय समस्याएं हल हो सकती हैं।

अब हम अपनी गति के विषय में भी कुछ सोचें। क्योंकि बाहिरी लोग हमारे स्वयंसेवकों की ओर कुछ विशेष दृष्टि से देखा करते हैं। वह कैसा दीखता है? कैसे देखता है? कैसा बर्ताव करता है? चौबीसों घण्टे उसके मनमें क्या चला करता है? अपनें ध्येय के सम्बन्ध में उसकी मानसिक दृढ़ता तथा तीव्रता किस सीमा तक है? आदि बातों को बाहिरी लोग बारीकी के साथ देखते हैं। संघ को उत्पन्न हुए आज दस वर्ष हो गये हैं। इतने दिनों में हमने कितना कार्य किया है? और वह ध्येय-सिद्धि की दृष्टि से कहां तक पर्याप्त है? परिस्थिति की कठिनता को मैं भी मानता हूं। परन्तु जब संघ का निर्माण हुआ था उस समय भी परिस्थिति इतनी प्रतिकूल थी, कि कार्य करना असम्भव सा प्रतीत होता था। जब कि इस प्रकार की अत्यन्त कठिन परिस्थिति से न डरते हुए,

निर्भीकता के साथ उससे हमने लगातार सामना किया और बराबर कार्य करते रहे, तब आज ही हमारे सामने परिस्थिति की कठिनता का प्रश्न क्यों उठना चाहिए ? आज तक हमारे कार्य करने की जो भी गति थी वह ठीक ही थी। किन्तु अब आगे कैसे होगा ? क्या हमने आज तक जो कुछ कार्य किया; उसी को आप पर्याप्त समझते हैं ? मैं निश्चय ही कह सकता हूं कि प्रत्येक स्वयंसेवक कम से कम अपने मनमें तो यही उत्तर देगा कि जितना कार्य हो जाना चाहिए था, नहीं हो पाया और न हम कर ही रहे हैं।

पिछले दिनों मेरे एक दौरे में एक बार किसी महाशय से भेंट हुई थी, जिनसे मैंने पूछा—'क्या आपके सिर पर संघ का भूत सवार है ?' जिस पर वे महाशय मुझसे उल्टे पूछ बैठे—'यह संघ का भूत क्या बला होती है ?' मैंने उसके उत्तर में कहा—'महाशयजी, भूत तो वह बला होती है, जिसके एक बार सवार हो जाने पर मनुष्य को न कुछ दीखता है और न सूझता है। दूसरों को तो क्या, मनुष्य स्वतः को ही भूल जाता है और पूरा भूतमय हो जाता है। बस, ठीक उसी तरह जहां एक-बार संघ का भूत किसी स्वयंसेवक के सिर पर सवार हुआ, कि वह सब भूल जाता है, यहां तक कि अपने आपको भी भूल जाता है, और पूरा संघमय हो जाता है। संघ के कार्य के अतिरिक्त उसको अन्य कुछ सूझता ही नहीं।'

इस प्रकार समझाने पर बेचारे महाशयजी अपनी अड़चनों की लम्बी-चौड़ी कहानी सुनाने लगे—'क्या किया जाय ? मुझे अमुक कचहरी में नौकरी करनी पड़ती है।' इत्यादि इत्यादि।

मैंने फिर उनसे पूछा—'कल्पना कीजिए कि किसी मृत व्यक्ति का भूत आपके अन्दर आ गया। तब फिर आप क्या करेंगे ? फिर तो नौकरी आदि सब कुछ भूल जावेंगे या नहीं ?'

महाशयजी सचमुच खरे दिल के थे। तुरन्त ही वहां से उठकर चल दिये। वे दूसरे रोज फिर मेरे पास आ पहुंचे और कहने लगे—'आपकी कही हुई बातों पर मैंने कल रात भर बहुत सोचा किन्तु मैं

इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि जिस भूत के विषय में आपने मुझसे कल कहा था वह अभी तक मेरे सिर पर सवार नहीं हुआ है।'

उनके मन की सचाई को देखकर मुझे संतोष हुआ। उक्त घटना के कई दिन उपरान्त मैं फिर एक बार दौरा करते करते उन महाशय के गांव में पहुँचा। वे स्वयं मेरे पास आये और बताने लगे की अब मेरे सिर पर संघ का भूत सवार हो चुका है। और वे महाशय आज असीम संघ कार्य कर रहे हैं। स्वयंसेवक बन्धुओ ! आपसे मेरी एक ही मांग है। संघ का यह भूत आप में से प्रत्येक के सिर पर सवार हो जाय। जहां आपके सिर पर संघ का भूत सवार हुआ कि वह आप ही आप दूसरों के भी सिर पर सवार हो जावेगा और इस प्रकार संघ के विचार तथा कार्य में सब लोगों के तन्मय हो जाने पर कार्य करना तनिक भी कठिन नहीं रहेगा।

७. हमारा सच्चा आदर्श

मुझसे कई प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। आज उनमें से एक प्रश्न के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत विवेचन करने का विचार है। वह प्रश्न यह है कि संघ का स्वयंसेवक अपने सामने क्या आदर्श रखे—तत्व या व्यक्ति ? यदि उसे किसी व्यक्ति को ही अपना आदर्श मानना हो तो वह कौन हो ?

आज तक हम यही कहते आये हैं कि तत्व ही सदा हमारा आदर्श होवे। परन्तु तत्व का प्रतिपादन करना जितना सहज है, उसे प्रत्यक्ष आचार में लाना उतना ही कठिन है। समाज में मूर्ति-पूजा रूढ़ होने का भी तो यही कारण है। वास्तव में क्या पत्थर में भगवान हैं ? अदृश्य, अस्पष्ट तथा अव्यक्त विश्वचालक शक्ति का निर्गुण और निराकार स्वरूप में पूजन करना सबके लिए सम्भव नहीं हुआ करता; इसीलिए उस मूर्ति को उस विश्व-व्यापी शक्ति का दृश्य स्वरूप मानते हुए लोग उसकी पूजा करते हैं। परन्तु निरी मूर्ति-पूजा तो धर्म का सार-सर्वस्व नहीं है। मूर्ति-पूजा तो इसलिए नहीं की जाती कि मूर्ति सुन्दर,

सुडौल अथवा उच्चतम-कला का प्रदर्शन है; किन्तु इसलिये कि कोई विशिष्ट तत्व उस मूर्ति के रूप में दृष्टिगोचर होता है; अथवा यों कहिये कि लोग उस मूर्ति को एक विशिष्ट तत्व का प्रतीक समझते हैं। जन साधारण को उस अव्यक्त स्वरूप का सम्यक् ज्ञान करा देने का मूर्तिपूजा एक सुलभ साधन है।

तो हमारे लिए आदर्श व्यक्ति वही हो सकता है, जो न हमसे कभी दूर जाय और न ही हम उससे आजन्म दूर जावें। जिसे हम सद्गुणों का मूर्तिमान् स्वरूप समझते हों, जिसे सर्वथा प्रमादातीत मानते हों, वही व्यक्ति हमारा आदर्श होना चाहिए। अन्यथा आदर्श माने हुए व्यक्ति से यदि कोई भूल हो जाय तो हमें कोई दूसरा आदर्श ढूंढना पड़ेगा। और यदि वह भी कोई गलती कर बैठे तो उसके प्रति भी हमारी श्रद्धा नष्ट हो जाना स्वाभाविक है और फिर हमें किसी तीसरे व्यक्ति को ढूंढने की नौबत आजावेगी। फलतः हमें नित्य नया आदर्श व्यक्ति खोजते रहना पड़ेगा। आदर्श व्यक्ति की कल्पना करते समय किसी ऐसे ही व्यक्ति का चुनाव करना योग्य होगा, जिसमें किसी प्रकार के दोष न हों। इतना ही नहीं, हम जिन गुणों को आदर्श मानते हैं वे सारे उस व्यक्ति में हमें दिखाई पड़ें।

आप सभी को विदित ही है कि गुरुपूजा के दिन हम ध्वज को गुरु मानकर उसकी पूजा करते हैं। हम किसी व्यक्ति की पूजा नहीं करते, क्यों कि हम किसी भी व्यक्ति के बारे में यह विश्वास नहीं दिला सकते कि वह अपने मार्ग पर अटल ही रहेगा। केवल तत्व ही अटल पद पर आरूढ़ रहा करते हैं, अथवा ध्वज अटल है। जिस ध्वज को देखते ही हमारे राष्ट्र का समस्त इतिहास, संस्कृति एवं परम्परा हमारी आँखों के सामने खड़े हो जाते हैं, जिसको देखते ही हमारे हृदय की भावनायें उमड़ पड़ती हैं, तथा हृदय में एक विशिष्ट स्फूर्ति का संचार हो जाता है, ऐसे भगवा ध्वज को अपने तत्वों का प्रतीक होने के नाते हम अपना गुरु मानते हैं। यही कारण है कि किसी भी व्यक्ति को अपना गुरु मानने की संघ की तनिक भी इच्छा नहीं है।

यदि तत्व को आदर्श रूप में निभा सकें, तब तो फिर कहना ही क्या ? परन्तु यदि विशुद्ध एवं निर्विकार भाव से तत्व की पूजा करना असम्भव हो तो उन तत्वों के प्रतीक-स्वरूप, सद्‌गुणों से युक्त व्यक्ति को ही अपने गुरु-स्थान पर रखें। किन्तु वह व्यक्ति हो ऐतिहासिक। क्योंकि यदि हम वैदिक अथवा पौराणिक काल के किसी व्यक्ति को अपना आदर्श मानें तो उसकी ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में कई शंकाएँ-कुशंकाएँ उपस्थित की जाती हैं। जैसे—क्या सचमुच ऐसा कोई व्यक्ति संसार में रहा होगा ? अथवा यह कोरी कवि-कल्पना ही है ? सच पूछो तो राम को आदर्श अथवा कृष्ण को गुरु मानने के सम्बन्ध में शंका उपस्थित होने की कोई जगह नहीं है, फिर भी हाल ही के इतिहास के किसी ऐसे संशयातीत तथा दोष रहित, महान् एवं प्रभावी विभूति को ही आदर्श चुनना अधिक श्रेयस्कर है।

महान् पुरुषों के सम्बन्ध में कुछ विकृत धारणाएं समाज में रूढ़ हो गई हैं। श्रीकृष्ण ने अपने जीवन में ऐसे महान् कार्य किये हैं कि उनके कारण उन्हें आदर्श माना जाना चाहिए। किन्तु श्रीकृष्ण ने अपने जीवन में जो अद्‌भुत कार्य किये हैं, वे हमारे हाथों होने असंभव हैं; वे देव थे, पूर्णावतार थे, देवताओंका अनुकरण मनुष्य से होना संभव ही नहीं, आदि ऐसी ही कुछ विकृत धारणाएं हमारे समाज में रूढ़ हैं। श्रीकृष्ण के समान पूर्ण पुरुष को ईश्वर अथवा अवतार की श्रेणी में ढकेल कर हम ऐसी धारणा कर लेते है, कि उनके गुणों का अनुशीलन हमारी शक्ति के परे है। श्रीरामचन्द्रजी या श्रीकृष्णजी की पूजा करने का अथवा रामायण, महाभारत, गीता जैसे श्रेष्ठ ग्रंथ पढ़ने का उद्देश्य गुणग्राहकता नहीं होता; केवल पुण्य-संचय की मूढ़ कल्पना से ही इन ग्रंथों के पाठ किये जाते हैं। यह कितनी बड़ी भूल है !

अपनी सदा की प्रथा के अनुसार मैं यहां भी एक छोटा सा उदाहरण बता दूं। किसी समय हमारे यहां एक परिचित अतिथि पधारे। वे प्रति-दिन नियमपूर्वक स्नान-संध्या करने के उपरांत अध्यात्म-रामायण का एक अध्याय पढ़ा करते थे। एक दिन की बात है कि मैंने भोजन करते

समय उनसे पूछ ही लिया, "आपने जो अध्याय पढ़ा उसका अनुशीलन तो आप करेंगे ही" इतना सुनना था कि बस वे बौखला उठे और क्रोध से संतप्त होकर बोले "आप रामचन्द्रजी और भगवान् का उपहास करते हैं ? भगवान् के गुण क्या कभी मनुष्य में आ सकते हैं ? हम लोग गुण–ग्रहण करने की दृष्टि से नहीं, अपितु पुण्य–संचय और मोक्ष–प्राप्ति के लिए ग्रंथ पाठ करते हैं।"

हिन्दु जाति की अवनति के जो अनेकानेक कारण हैं, उनमें से उपर्युक्त भावना भी एक प्रधान कारण है। वास्तव में हमारे धर्म–साहित्य में एक से एक बढ़कर ग्रन्थ हैं। हमारा गत इतिहास भी तो अत्यन्त महत्वपूर्ण, वीररस प्रधान तथा स्फूर्तिदायक है। परन्तु कभी उस पर योग्य रीति से विचार करना सीखा ही नहीं। जहाँ कहीं भी कोई कर्तृत्वशाली या विचारवान व्यक्ति उत्पन्न हुआ कि बस हम उसे अवतारों की श्रेणी में ढ़केल देते हैं; उस पर 'देवत्व' लादने में तनिक भी देर नहीं लगाते। इस कारण यह भ्रममूलक धारणा रखते हुए कि देवताओं के गुणों का अनुशीलन मनुष्य शक्ति के परे है, हम उनके गुणों को कभी भी अपने आचरण में नहीं लाते। यहाँ तक कि अब तो श्री शिवाजी और लोकमान्य तिलकजी की गणना भी अवतारों में की जाने लगी है। शिवाजी महाराज को तो शंकर का अवतार समझने ही लगे हैं और शिवचरित्र (शिवाजी चरित्र) में इसी के समर्थन में एक उल्लेख भी पाया जाता है। वास्तव में लोकमान्यजी तो हम लोगों के समय में हुए हैं; परन्तु मैंने एक बार ऐसा चित्र देखा था जिस में उन्हें चतुर्भुज बना कर उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म दे दिये गये थे। निस्संदेह इस तरह अपनी महान् विभूतियों को देवताओं की श्रेणी में ढ़केल देने की सूझ की बलिहारी है। महान् विभूति के देखने भर की देर है कि रख ही तो दिया उसे देवालय में ! वहाँ उसकी पूजा तो बड़े मनोभाव से होती है, किन्तु उसके गुणों के अनुकरण करने का नाम तक नहीं लिया जाता। तात्पर्य यह है कि इस तरह अपने पर आने वाली जिम्मेदारी जान–बूझकर टाल देने की यह अनोखी कला हम हिन्दुओं ने बड़ी खूबी से अपनाली है।

अतः हमें ऐसे ही व्यक्ति को आदर्श मानना चाहिये कि जो प्रमादातीत हो तथा जिसके गुणों का अनुकरण हम कर सकते हों। इस दृष्टि से यदि हम हाल ही के इतिहास को देखें तो हमारी आँखों के सामने एक ही महान् व्यक्ति आता है और वह श्री छत्रपति शिवाजी महाराज। मैं इस बात पर जोर नहीं देता कि आप उन्हें अथवा और किसी व्यक्ति को ही अपना आदर्श मानें। यदि तत्व को अपना आदर्श मानना हो तो फिर कहना ही क्या है ? किन्तु यदि आपका विचार किसी व्यक्ति को अपना गुरु मानने का हो तो श्री छत्रपति शिवाजी महाराज जैसा व्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है। क्योंकि छत्रपति के गुरु श्रीसमर्थ रामदास स्वामी जी ने स्वयं जनता से कहा है कि शिवाजी को ही आदर्श मानो। "शिवरायाचे आठवावे रूप, शिवरायाचा आठवावा प्रताप" अर्थात् श्री शिवाजी के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए और उन्हीं के प्रताप का स्मरण भी करना चाहिए । ये हैं श्रीरामदास स्वामीजी के वचन ! शिवाजी महाराज इतने "प्रशस्तः श्रेयान् श्रेष्ठः" थे कि समर्थ रामदासजी को केवल वे ही जनता के लिए योग्य आदर्श प्रतीत हुए। शिवाजी महाराज को आदर्श मानने से हमें उनके द्वारा हिन्दुत्व की रक्षा करने के हेतु किए गए सभी पराक्रमों का स्मरण हो आता है; क्यों कि जो स्फूर्ति हमें भगवा ध्वज के दर्शनों से प्राप्त होती है वही स्फूर्ति श्रीछत्रपति शिवाजी महाराज के चरित्र से मिलती है। जो भगवा ध्वज धूल में मिल चुका था, उसी को एक बार पुनः ऊँचा फहराकर उन्होंने हिन्दूपद-पादशाही की प्राण-प्रतिष्ठा की और नष्ट-प्रायः हिन्दुत्व को पुनर्जीवित किया। अतएव यदि आप किसी व्यक्ति को ही आदर्श मानना चाहें, तो श्री शिवाजी को ही अपना आदर्श रखें। अभी तक वे पूर्णतया भगवान् के अवतारों की श्रेणी में नहीं ढकेले गये हैं। इसीलिए भगवान् बना दिए जाने के पूर्व ही उन्हें आदर्श व्यक्ति मानकर अपने सामने रखिए।

अब यह प्रश्न ही नहीं उठता कि संघ के 'क्ष' अथवा 'य' जैसे अधिकारियों में से किसे आदर्श समझा जाय ? वे कदाचित् पूर्णतया दोष रहित हों और मैं तो यह भी मानता हूँ कि हम में से कितनों ही में शिवराज के गुणों को अपने में आत्मसात् करने की भी पात्रता होगी। किन्तु

फिर भी, अभी 'क्ष' अथवा 'य' अविकसित कलियां ही हैं। अतः प्रफुल्लित पुष्पों को ही हम अपने सामने आदर्श रूप में स्वीकार करें; क्योंकि यदि कदाचित् अर्धोन्मीलित कलिका में कीड़ा हुआ तो हमें निराश होकर हाथ मलते रह जाना पड़ेगा। जो कुसुम पूरा-पूरा खिल चुका हो, जो स्पष्टतया शुद्ध और कृमि-रहित दिखाई पड़े, तथा जिसके अंतरंग एवं बहिरंग को हम पूर्णतया देख सकते हों, ऐसे सुमन को ही आदर्श रखने से हमारे कार्य-कुसुम में नव चैतन्य की अधिकाधिक बहार आती रहेगी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता हैं कि जिसका जीवन-सुमन खिला हुआ है, जो बिल्कुल स्पष्ट तथा अत्यंत पवित्र है और जिसका ध्येय चिर-सत्य ही है, ऐसे पुरुष को ही आप अपना आदर्श निर्धारित करें। यदि आप तत्व के स्थान में किसी महात्मा को ही अपना आदर्श निश्चित करना चाहें तो उस योग्य श्री शिवाजी महाराज के अतिरिक्त अन्य कोई न मिलेगा, इतना ही मैं कहना चाहता हूं।

८. त्रयोदश वार्षिक सिंहावलोकन

गत तेरह वर्षों से हम लोग संगठन का कार्य कर रहे हैं। इसका प्रारम्भिक स्वरूप बहुत छोटा था। नदी का उद्‌गम भी बहुत छोटा रहता है; परन्तु जैसे-जैसे वह आगे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसका प्रभाव अधिकाधिक विस्तृत होता जाता है। तेरह वर्ष पूर्व जब हम लोगों ने संगठन का प्रारम्भ किया था, उस समय समाज की बड़ी विकट परि-स्थिति थी। सभी लोगों के हृदय में अपने राष्ट्र की समस्याओं को हल करने की चिन्ता थी; किन्तु उनकी विचार-धाराएं भिन्न भिन्न दिशाओं में बह रही थीं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचार-धारा स्वीकार करने का साहस उनके हृदय में न था। 'हिन्दुओं का हिन्दुस्थान' कहने में साधारण जन तो क्या बड़े बड़े नेता भी हिचकिचाते थे। इतना ही नहीं वे तो इस कल्पना के पुरस्कर्ताओं की गणना मूर्खों अथवा देशद्रोहियों में करना ही जानते थे। परन्तु हमारी अपने तत्व पर पूर्ण श्रद्धा थी। हमें अपने इस सिद्धांत की सत्यता पर पूर्ण विश्वास था। 'इच्छा करने से फल सिद्धि होती है' इस न्याय से प्रेरित होकर कार्य करते हुए हम लोग

सद्यः स्थिति को प्राप्त हुए हैं। इस वर्ष की हिन्दु–महासभा के अधिवेशन पर दृष्टिपात करने से हम देखते हैं कि वह आज तक के सभी अधिवेशनों से बढ़कर रहा है। भिन्न भिन्न प्रान्तों के बड़े बड़े नेता इस स्थान पर एकत्र हुए हैं। मद्रास प्रान्त छोड़ कर शेष सभी प्रान्तों से लोग बहुत बड़ी संख्या में इस अधिवेशन के लिए उपस्थित हुए हैं। और प्रमुखता से दृष्टिगोचर होने वाली बात यह है कि 'हिन्दू राष्ट्र' तथा 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है'–इस कल्पना से सारा वातावरण गूंज रहा है। श्री. पद्मराजजी जैन ने एक बार तो यहां तक कह दिया कि 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है', यह तत्व आधुनिक अथवा नवीन कल्पना न होकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य के फल स्वरूप सर्वमान्य हो गया है। 'हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व' यह कल्पना लोगों के हृदय में बद्धमूल हो रही है। क्या यह हम लोगों की दृष्टि से महत्वपूर्ण विजय नहीं है ?

परन्तु हमें इस बात का ठीक–ठीक स्मरण रखना चाहिए कि केवल किसी विचार–धारा की विजय से कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं हुआ करता। हम लोग यह न समझ बैठें कि लोगों द्वारा तत्वप्रणाली मान्य होने से ही हमारा कार्य पूरा हो जाता है। यह बिलकुल सत्य है कि हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है तथा हिन्दू ही उसके मालिक हैं। परन्तु क्या इसके साथ ही साथ इन तत्वों को कार्य रूप में परिणत करने की जिम्मेदारी हम पर नहीं आती ? क्या इन्हें प्रत्यक्ष आचरण में लाना हमारा ही काम नहीं है ? अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिए अनुकूल परिस्थिति निर्माण करने का दायित्व हम पर ही हैं, क्योंकि जब इस प्रकार की अनुकूल परिस्थिति निर्माण हो जायगी तभी हम अपना तत्व कार्यरूप में परिणत करने में सफल हो सकेंगे। इसी हेतु से हम लोगों ने संगठन को दृढ़तापूर्वक अपनाया है तथा इसी हेतु से हम लोग संघ का बीज देश के कोने कोने में बो देने का जी तोड़कर प्रयत्न कर रहे हैं। समस्त हिन्दूसमाज संगठित स्वरूप को प्राप्त करके अपने पैरों पर खड़ा रहे; इसी एक बात के लिए हम लोगों ने अपना सारा जीवन लगा देने का संकल्प किया है। अतएव हमें अपने दायित्व तथा कार्य की गंभीरता को अवश्य ही स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए।

हमारे कार्य को आरम्भ हुए तेरह वर्ष पूरे हो चुके हैं। इस अवधि में हमारे कार्य का विस्तार अधिक हो चुका है। अब लोग हमारी बातों पर ध्यान देने को तैयार हो गए हैं और उन्हें मानने भी लगे हैं। वे हमारे कार्य का स्वागत करने को तैयार हैं। यह सब तेरह वर्षों के कार्य का फल है। परन्तु तेरह वर्ष की अवधि थोड़ी नहीं है। ठीक-ठीक विचार करने से हममें से प्रत्येक स्वयंसेवक देख सकता है कि इस एक तप की अवधि में अपेक्षाकृत बहुत ही थोड़ा काम हुआ है। यदि केवल हमें अपनी विचार-प्रणाली लोगों में प्रचलित तथा मान्य कराने में तेरह वर्षों का सुदीर्घ काल लग जाता है, तो हम यह अवश्य सोचें कि इसी हिसाब से प्रत्यक्ष संगठन करने, हृदय में भावनाओं की ज्योति जगाने, अपने कार्य का अभेद्य दुर्ग निर्माण करने तथा उसमें पूरी सफलता प्राप्त करने के लिए कितने वर्षों तक हम कार्य करते रहेंगे? इस सरल त्रैराशिक की रीति से हिसाब लगाओ तो आप इस बात की कल्पना सहज में ही कर लेंगे कि यदि इसी गति से काम चालू रहा तो पूर्ण यश-प्राप्ति के लिए कितना लम्बा समय लगेगा; और तब कार्य की गति बढ़ाने की आवश्यकता का आप निःसन्देह अनुभव करेंगे।

कई लोग यह कहते फिरते हैं कि संघ के स्वयंसेवकों का काम त्यौहारों के समय खाकी गणवेष पहिन कर लेफ्ट-राईट करते हुए घूमना मात्र है। उनकी समझ में संघ कोई ठोस काम नहीं करता। स्पष्ट है कि उनका यह आक्षेप अज्ञान-मूलक ही है। दूर से संघ के सम्बन्ध में विचार करने के कारण ही वे इस प्रकार के आक्षेप किया करते हैं। उनकी शंका का निराकरण करने का केवल एक ही उपाय है कि हम उनका हृदय अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें संघ से एकरूप बना दें। हम इस महान् कार्य के प्रति, जो हमारे जीवन का एकमेव कार्य है, अविचल निष्ठा रखें। अपने ध्येय को हम हृदय-पटल पर अंकित कर लें। हमें समूचे हिन्दू-समाज में नव-चैतन्य तथा निर्भय-वृत्ति उत्पन्न करनी है। हमें सामाजिक शक्ति निर्माण करके समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में स्वाभिमान तथा आत्म-विश्वास जागृत करना है। दूसरे समाजों में प्रत्येक व्यक्ति को यह विश्वास रहता है कि उसका समाज उसकी सहायता के

लिए कटिवद्ध है। हमें भी अपने समाज के प्रत्येक घटक में ठीक वैसा ही विश्वास निर्माण करने का जी–जान से प्रयत्न करना है। इतना ही नहीं, सारा संसार भी इस बात का अनुभव करने लगे कि प्रत्येक हिन्दू के पीछे उसका पुरा समाज खड़ा है। यह काम बहुत बड़ा है। इसे पूरा करने के लिए हमें प्रयत्नों की पराकाष्ठा करनी होगी। यही सोचते हुए हमने इसी कार्य के प्रति अपनी सारी शक्तियां केन्द्रीभूत करने का संकल्प किया है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने खूब सोच समझ कर अपना कार्यक्षेत्र निर्धारित किया है। और इसलिए वह अन्य किसी कार्य के झमेले में नहीं पड़ना चाहता। अपने ध्येय पर दृष्टि रखते हुये हमें अपने निश्चित मार्ग पर अग्रेसर होना है। हममें रात–दिन केवल इसी बात का विचार बना रहे कि हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण इस पवित्र काम के लिए किस प्रकार खर्च हो सकेगा। साथ ही साथ हमें सतत इसी बात की लगन लगी रहनी चाहिए कि हमारा संगठन प्रतिक्षण किस प्रकार बढ़े। यदि संगठन केवल कहने भर के लिए अथवा दिखाऊ हो तो उससे कोई लाभ नहीं हो सकता। कोरे आडम्वर से कभी सफलता प्राप्त नहीं हुआ करतीं। वह तो केवल ढोल के अन्दर की पोल वाली बात होती है। कार्य ठोस हो तभी वह टिक सकता है। इसीलिए हमें अपने कार्य में तेज, दृढ़ता तथा तीव्रता निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिए। इन गुणों का निर्माण करने में तभी सफलता मिल सकेगी, जब हम अपने कार्य की गति कई गुना वेग से बढ़ाने का यत्न करेंगे। गत बारह वर्षों में हमने जिस उत्साह तथा परिश्रम से काम किया है, वह उत्साह और वह परिश्रम अब कई गुना बढ़ जाना चाहिए। यद्यपि यह सत्य है कि अब हमारी लगभग चार सौ शाखाएँ तथा चालीस हजार स्वयंसेवक हैं; किन्तु फिर भी इसके साथ ही क्या हमें इसका विचार न करना चाहिए कि उनमें कार्य–प्रसार करनेवाले कितने हैं? हमें यह तो स्वीकार ही करना होगा कि इन चालीस हजार में से तत्परता से स्वयंमेव कार्य करनेवालों की संख्या जितनी होनी चाहिए, उतनी नहीं है। जितनी ही अधिक संख्या में ऐसे कार्यकर्ता निर्माण होंगे, उसी हिसाब से हमारे कार्य की प्रगति होगी। अतएव हमें इसके लिए प्रयत्न करना चाहिये।

कुछ लोग पूछते हैं कि संघ में हमारा क्या कार्य है ? प्रौढ़ लोग कहते हैं, कि संघ में आकर हमसे क्या हो सकता है ? परन्तु यह समझना भूल होगी कि किसी विशिष्ट योग्यता अथवा आयु का ही मनुष्य संघ के लिए उपयोगी है तथा जो वैसा न होगा वह संघ के लिए निरुपयोगी है। संघ के कार्य-क्षेत्र में प्रत्येक की आवश्यकता है और प्रत्येक के लिए यहां कार्य है। क्योंकि संघ-कार्य एक व्यक्ति का न होकर समाज के सभी व्यक्तियों का है। यहां जो और स्वयंसेवक उपस्थित हैं, उनके सामने भी किसी समय यह समस्या थी, किन्तु एक बार संघ-कार्य में हाथ डालते ही उन्हें अपना कार्य मालूम हो चुका है। वयोवृद्ध लोगों को तो संघ के कार्य में नितान्त महत्व का स्थान है। वे भी संघ में महत्वपूर्ण कार्य का दायित्व उठा सकते हैं। यदि सयाने लोग अपनी प्रतिष्ठा तथा व्यवहार-कुशलता का उपयोग संघ-कार्य के हेतु करें तो युवक लोग अधिकाधिक उत्साह से कार्य कर सकेंगे। उनके मार्ग-प्रदर्शन से युवकों की शक्ति कई गुना बढ़ जाती है तथा संघ-कार्य भी अपने निश्चित ध्येय की ओर वेग से बढ़ता चला जाता है। इसलिये किसी को भी संघ के प्रति उदासीनता रखने का कोई कारण नहीं है। प्रत्येक को उत्साह तथा साहस से आगे आकर कार्य में जुट जाना चाहिये।

यदि सब लोग इस प्रकार कार्य करने लग जावें तो हमारा कार्य बड़ी शीघ्रता से बढ़ेगा क्योंकि यह समय हमारे कार्य के लिये बड़ा अनुकूल है। आज जैसी अनुकूल परिस्थिति पहिले कभी न थी। हमें इस सुअवसर का पूरा-पूरा लाभ उठा लेना चाहिये। अब यदि हम लोग किसी भी प्रान्त में जावें, तो वहां हमारे कार्य का स्वागत होता है। क्यों कि संघ की आवश्यकता सब जगह प्रतीत होने लगी है। आज ही प्रातः काल दूसरे प्रांतों से आए हुए प्रमुख सज्जनों की बैठक अपने शिबिर में हुई तथा उनसे विचार विनिमय हुआ, यह तो आप जानते ही होंगे। सभी बड़े-बड़े लोगों ने हमारे कार्य की अत्यंत प्रशंसा की तथा अपनी कृति से यह सिद्ध कर दिया कि उन्होंने इसका महत्व भली भांति जान लिया है। दो या तीन लोगों को छोड़ शेष सभी यथा-विधि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य बन गये हैं। यह बात बहुत महत्व रखती है, क्योंकि उन्होंने

अपनी कृति के द्वारा कार्य करने का निश्चय प्रगट किया है। भिन्न-भिन्न प्रांतों के लोग मानो हमें निमंत्रण दे रहे हैं। अब उन्हें आवश्यकता है, केवल हमारे नेतृत्व की। वे संघ द्वारा दर्शित मार्ग पर चलते हुए हमारे जैसा काम करने को उत्सुक हैं। अतएव, यदि हममें से सभी वृद्ध तथा तरुण इस कार्य क्षेत्र में कूद पड़ें तो सभी के सम्मिलित प्रयत्नों से हमारा कार्य सब जगह फैल सकेगा तथा दूसरे प्रांतों में रहनेवाले अपने इन भाईयों के प्रस्तुत उत्साह का हम पूरा-पूरा लाभ उठा सकेंगे।

प्रौढ़ लोग तो प्रांत के बाहर जाकर कार्य कर ही सकते हैं; किन्तु अपने साथ तरुणों को भी दूसरे प्रांतों में कार्य करने को प्रवृत्त करें। तरुण भी स्वयं स्फूर्ति से दूसरे प्रांतों में कार्य करने का सुअवसर न गँवायें। वे अपनी पढ़ाई का कार्य करते हुए संघ का भी कार्य सुचारु रूप से कर सकते हैं। जिन लोगों को दोनों बातें अनायास ही साध्य हों, उनमें कोई भी दूसरे प्रांतों में जाने से पीछे न रहे। संघ के नित्य नैमित्तिक सभी कार्यक्रमों से तथा ओ० टी० सी० की शिक्षा से लाभ उठाकर, आप संघ के सभी कार्यों में पारंगत हो जायें। संघ-कार्य सुचारु रूप से करने के हेतु आप लोग उसमें उपस्थित होने वाली छोटी मोटी कठिनाइयों में से मार्ग निकालना सीखें तथा इस प्रकार की शिक्षा पाकर शीघ्रातिशीघ्र इस कार्य के प्रसार के लिए घर से बाहर निकलें, अपना गांव छोड़ें, अपने प्रांत के बाहर पांव रखें।

साथ-साथ आप इसका भी ध्यान रखें कि आपके स्थान तथा आपके प्रांत में संघ का कार्य जितना ठोस तथा गहरी नींव पर स्थित रहेगा, उसी प्रमाण में चारों ओर अपने कार्य के विस्तार की गति होगी। अतएव, स्थानिक संघ कार्य ही संघ के भावी कार्य विस्तार की नींव है। आप अपने मित्रों को संघ में लावें तथा इस बात की सतर्कता रखें कि एक बार संघ में प्रवेश कर चुकने पर कोई भी व्यक्ति संघ से दूर न जाने पावे। आपने हौज और नल सम्बन्धी प्रश्न विद्यार्थी दशा में किये होंगे। उस समय आपको यह सोचना पड़ा होगा कि हौज में पानी भरने वाले तथा उसे खाली करनेवाले नल लगे रहने पर हौज कितने समय में भरेगा। परन्तु

संघ के कार्यकर्ताओं को इस प्रकार–प्रश्न हल करने का अवसर न आने पावे। संघ का हौज सदा भरता ही रहना चाहिए। जहां एक बार पानी हौज में आया कि बस, वह बाहर न जाने पावे। हम में इतना आत्मविश्वास और इतनी आकर्षण–शक्ति होनी चाहिये कि जहां कोई एक बार हमारे बीच आया कि वह हमारा ही हो गया; हमसे दूर होने का नाम भी न ले।

जो लोग कल के कार्यक्रम के समय उपस्थित थे उन पर बड़ा आश्चर्यकारक परिणाम हुआ। उस दृश्य का प्रत्येक के हृदय पर स्थायी प्रभाव पड़ा है। प्रत्येक के हृदय में यह अभिलाषा जागृत हुई कि उसके प्रांत में भी ऐसा ही संघ स्थापित हो। यों कहिये कि अनायास ही सारे देश में इस कार्य के विस्तार का उपक्रम यशस्वी हो गया। इसका सारा श्रेय आप लोगों पर ही है। बाहर कहीं न जाते हुए, यहीं बैठे बैठे लोगों के हृदय पर आप अपने कार्य की छाप डाल सके हैं। परन्तु इससे पूरा–पूरा लाभ उठाने के लिए अब हमें अन्यान्य प्रांतों में जाना ही होगा।

आप पूर्ण विश्वास रखें कि इस दृष्टि से कार्य करते हुए हम अवश्य ही विजयी होंगे। हमारा कार्य दिन–दूना रात चौगुना बढ़ रहा है। सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि हमारी प्रगति होती जा रही है। पूना का ही उदाहरण लीजिए। पूना की संघ–शाखा ने अल्प काल में जो प्रगति की है उसे स्वयं देख पूना के लोग दांतों के तले अंगुली दबा रहे हैं। आपको यह भली भांति स्मरण रहे कि हमारा निश्चित और स्पष्ट ध्येय ही हमारी प्रगति का मूल कारण है। संघ के आरम्भ से हम लोगों ने एक ही उद्दिष्ट अपने सामने रखा है। हमारी भावनाएं ध्येय के साथ समरस हो गई हैं; हम कार्य से एकरूप हो गये हैं। जब पूना में संघ की शाखा स्थापित हुई, उस समय एक बैठक में संघ पर अनेक आक्षेप किये गये और उनके यथोचित उत्तर भी दिये गये। उनमें से एक आरोप यह था कि संघ के सदस्य होने के उपरान्त लोग अपने अन्य सभी व्यवहार भूल जाया करते हैं। यह सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मैंने कहा कि इसके पहले के

आपके सारे आक्षेप निर्मूल हैं, किन्तु मैं जानता हूं कि आपका यह आक्षेप सर्वथा ठीक है; क्योंकि यह आरोप अक्षरशः सत्य है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य संघ की शुद्ध तत्व-प्रणाली में तल्लीन हो जाता है तथा उसे अपने निजी व्यवहार और व्यक्तिगत काम काज की सुध नहीं रहती। संघ की विचार-प्रणाली का आकलन कर लेने पर स्वयंसेवक आप ही आप, संघ के अतिरिक्त अन्य सभी बातों से दूर हटता जाता है। यही संघ की सफलता का रहस्य है। आप जितना अधिक संघ से समरस होने का प्रयत्न करेंगे, उतने ही वेग से हमारे कार्य की प्रगति होगी। अतएव आप ऐसा ही बनने का निश्चय करें। स्वयं आप संघ से एकात्म होकर अपने अन्य वन्धुओं को भी वैसा बनाने का प्रयत्न करें। आप लोगों को सदा इसी बात की चिन्ता होनी चाहिये कि यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र कैसे बढ़े तथा उसी के अनुरूप आप भरसक उत्साह और तीव्रता से कार्य मे जुट जावें तथा तल्लीन होकर कार्य करें। ऐसा करने से निश्चय ही विजय-श्री आपको जयमाला पहिनावेगी।

८. चेतावनी

व्यक्ति के जीवन में जिस प्रकार नानाविधि बाधाएँ आती हैं, उसी प्रकार संघ के जीवन में भी बाधाओं की कमी नहीं। परन्तु बाधाएँ चाहे जितनी आवें, संघ का पग तो आगे बढ़ना ही चाहिए। मेरी अटल श्रद्धा हो गई है कि हम पर भगवान् की कृपा सदा बनी रही है और आगे भी बनी रहेगी; क्योंकि भगवान् हमारे हृदय के भावों को ठीक ठीक जानते हैं। हमारा हृदय पवित्र और शुद्ध है। इसमें पाप का लवलेश भी नहीं। 'हिन्दू जाति की सेवा करना' इसी एक भाव से हमारा अंतःकरण तथा रोम-रोम परिपूर्ण है। अन्य किसी विचार के लिए हमारे हृदय में अवकाश ही नहीं। फिर भगवान् की कृपा हम पर क्यों न हो? आज इतनी अधिक अनुकूल परिस्थिति है कि हमारे कार्यकर्ता जहां भी पहुँच जाते हैं, सफलता ही पाते हैं। हमारा उद्देश्य और कार्य नितान्त पवित्र तथा जन-कल्याणकारी होने के कारण ईश्वरीय है, और यही कारण है कि हर समय तथा हर परिस्थिति में हम अवश्य सफल होंगे।

किस ध्येय-सिद्धि के लिए हमने कमर कसी है ? हम बस यही चाहते हैं कि हमारा पवित्र हिन्दू-धर्म तथा हमारी प्रिय हिन्दू-संस्कृति संसार में गौरव के साथ चिरजीवन प्राप्त करे। हमारा धर्म तथा संस्कृति कितनी भी श्रेष्ठ क्यों न हो, जब तक, उनकी रक्षा के लिए हमारे पास आवश्यक शक्ति नहीं है, तब तक वे जग के आदर के योग्य नहीं होंगे। हम शक्ति हीन हैं, इसी कारण हमारा धर्म और हमारी जाति आज इस दीन-हीन दशा को पहुँची हुई दृष्टिगोचर होती है। सब कुछ होते हुए भी अन्त में प्रश्न उपस्थित होता है शक्ति का ही। प्रकृति का नियम है, 'जीवो जीवस्य जीवनम्' अर्थात् दुर्बल लोग बलवानों के भक्ष्य होते हैं। संसार में दुर्बलों के लिए गौरव का जीवन असम्भव है। उन्हें तो बलवानों का दास होकर ही रहना पड़ता है। अखण्ड अपमान और कष्ट से परिपूर्ण असह्य जीवन ही उनके भाग्यमें बदा होता है। क्यों हमपर लगातार सदियों से विदेशी आक्रमणों का तांता लगा हुआ है ? हम दुर्बल, गये बीते से हो गये हैं, इसीलिए न ? हमारी यह शक्ति-हीनता ही हमारी सब विपत्तियों की वास्तविक जड़ है, जिसे हमें पहले उखाड़कर फेंक देना होगा। जब तक हम निर्बल रहेंगे, तब तक निसर्ग-नियमानुसार बलवानों को हमपर आक्रमण करने की इच्छा अवश्य होती रहेगी। केवल बलवानों को गालियां देने या उनकी निन्दा करने से क्या लाभ ? ऐसा करने मात्र से परिस्थिति में हेरफेर नहीं हो सकता। यदि हम शक्तिशाली होते तो क्या किसी का साहस होता कि वे हम पर आक्रमण करने का दुःसाहस करते; या हमें अन्य क़िसी प्रकार से अपमानित करते ? फिर हम क्यों दूसरे को दोष दें ? यदि दोष हमारा ही है तो उसे स्वीकार कर हमें अपनी कमजोरियों के दूर करने में प्रयत्नशील हो जाना चाहिये। हमपर आज तक जितने भी आक्रमण अथवा अन्याय हुए और आज भी हो रहे हैं, उनका उत्तर एक ही हो सकता है—हम प्रचंड शक्तिशाली बनें।

यह शक्ति हम केवल संगठन के ही द्वारा उत्पन्न कर सकते हैं; अन्य किसी मार्ग से हम यह शक्ति निर्माण नहीं कर सकते। आज भी हमारी हिन्दू जनसंख्या का पलड़ा बहुत भारी है। संसार की कुल जनसंख्या का पांचवां भाग है। इतनी विशाल जनता जब संगठित हो जायेगी, तब

उसकी ओर वक्र दृष्टि से देखने का साहस संसार की किसी भी शक्ति को न होगा। विश्वास कीजिए; हिन्दू शक्ति सारे संसार में अजेय सिद्ध होगी।

हमें बलवान होने की इच्छा है, और शक्ति-सम्पादन का एकमेव मार्ग कौनसा है, यह भी हम जान चुके हैं। किन्तु केवल इच्छा और ज्ञान से हम बलवान नहीं होंगे। उसके लिये तो आवश्यकता है लगातार कर्म करने की। संगठन के सिद्धान्त को हम अपने बर्ताव में लायें, तभी हममें शक्ति पैदा हो सकती है, अन्यथा नहीं। शक्ति बातों में नहीं, कृति में हुआ करती है। इसलिए हमें प्रत्यक्ष कृति करनी चाहिए। कितने भी व्याख्यान हम सुनें या सुनायें, जब तक इन व्याख्यानों के अनुसार हमारा व्यवहार नहीं होता, हमें ध्येय-सिद्धि की भूलकर भी आशा न करनी चाहिए।

हमारा संगठन अभी उचित परिमाण में नहीं बढ रहा है। इससे अनुमान होता है कि हम लोगों में अवश्य ही कुछ ऐसा विशेष दोष है, जो हमारे कार्य की गति को आगे बढने से रोकते हैं। यह स्वाभाविक है कि हिन्दू समाज के ही पुत्र होने के कारण, संघ के स्वयंसेवकों में भी हिन्दुओं की भली-बुरीं सभी बातें होंगी। किन्तु संघ की यही इच्छा है कि वे दोष नष्ट हो जायँ। समाज-विघातक बुराईयों का अथवा दोषों का प्रतिबिंब हम संघ के स्वयंसेवक नहीं सह सकते। हम लोगों की यही कोशिश रहेगी कि संघ के स्वयंसेवक सामाजिक दोषों से मुक्त हों तथा संघ के जीवन के नये गुण-संस्कार उनमें निर्माण हों। हिन्दुओं का सब से पहला सामाजिक दोष है उनकी निष्क्रियता। परन्तु संघ के स्वयंसेवकों को इतना कार्य-निरत रहना चाहिये कि संघ में निष्क्रियता का नाम-निशान भी दिखाई न दे। हममें कार्य के प्रति उत्कटता, तीव्रता और दृढ़ निश्चय हो तो हमारे सिर पर चढ़े हुए इस निष्क्रियता के भूत को हम सहज़ ही में मार भगा सकते हैं।

संघ का मन्तव्य यह है कि अपने समाज में समाज सेवा की बुद्धि से प्रेरित कार्यकर्ता, विपुल प्रमाण में निर्माण किये जाय। यदि आप में

कार्य करने की सच्ची इच्छा है तो आपको स्वयंस्फूर्ति से कार्य के विषय में विचार करना चाहिए। तभी आप कार्य कर सकेंगे। जितना बताया, केवल उतना ही कार्य करने से सच्चा कार्य नहीं हो सकेगा। सच्चे कार्यकर्ता को स्वयं सोचकर अपने कार्य की आयोजना बनानी पड़ती है। यदि आप अपने को संघ का कार्यकर्ता समझते हैं तो पहले आपको यह सोचना होगा कि आप कौन सा कार्य प्रतिदिन और प्रतिमास करते हैं ? सदा अपने किये हुये कार्य की आपको जांच पड़ताल करते रहना चाहिए। केवल हम संघ के स्वयंसेवक हैं और संघ ने गत चौदह वर्ष में अमुक कार्य किया है, इसी बात में आनन्द तथा अभिमान मानते हुए आलस्य में दिन काटना निरा पागलपन ही नहीं अपितु कार्यनाशक भी हैं। वास्तव में गत चौदह वर्षो के कार्य में गर्व करने योग्य कौन सी बड़ी बात है ? यथार्थ में हम इतने समय के अन्दर बहुत ही कम कार्य कर सके हैं इसका हमें खेद होना चाहिए। कार्य की विशालता को देखते हुए हम अपनी जिम्मेवारी को समझ लें। हमें अल्प-सन्तोषी नहीं होना चाहिए। जितना भी अधिक कार्य हम करें, कम ही होगा। अभी तक कार्य बहुत अधिक न हो सका, इसका कारण यह है कि हमारे दोष बहुत अधिक हैं। उन्हें शीघ्रातिशीघ्र दूर करने का यत्न करें। हमारे सिवा हमारे दोषों को दूसरा कौन दूर कर सकेगा? नागपुर तथा नागपुर जिला हमारे संघ के संगठन का केन्द्र-स्थान है। यहां से हमें चारों ओर स्फूर्ति की तरंगें फैलानी हैं। यह तभी हो सकता है, जब हम स्वयं अपने केन्द्र की सब से अधिक उन्नति करते हुए साथ ही साथ अन्य प्रान्तों की शाखाओं को भी आगे बढ़ने में भरसक सहायता करें। सारे हिन्दु-राष्ट्र को हमें अपने साथ आगे बढाते ले जाना है। यदि केन्द्र-स्थान कार्य में सब से अगुआ न रहा तो वह दूसरों को कैसे आगे बढ़ा सकेगा ? दूसरे कई आन्दोलन आज तक सफल न हो सके, इसका भी कारण यही है कि उनके कार्यकर्ता लोग दूसरों को आगे बढ़ने का उपदेश देते हुए भी स्वयं पिछड़ जाते थे। संघ के सम्बन्ध में इस प्रकार की अनुचित बात कभी न होनें दो। अपना दृष्टिकोण विशाल करो और तीव्र गति से आगे बढ़ो।

यह खूब समझ लो कि कष्ट उठाये और स्वार्थ–त्याग किये बिना कुछ फल मिलना असम्भव है। मैंने 'स्वार्थ–त्याग' शब्द का व्यवहार किया है। किन्तु हमें जो कार्य करना है, वह हमारी हिन्दु जाति के ही स्वार्थ के लिए होने के कारण, उसी में हमारा व्यक्तिगत स्वार्थ भी अन्तर्भूत है। फिर दूसरा स्वार्थ हमारे लिए बचा ही कौनसा? और यदि इस प्रकार यह कार्य हमारे स्वार्थ का ही है तो फिर उसके लिए हमें जो भी कष्ट उठाने पड़ेंगे उसे हम स्वार्थ–त्याग कैसे कह सकते हैं? वास्तव में यह स्वार्थ–त्याग हो ही नहीं सकता। हमें केवल अपने 'स्व' का अर्थ विशाल करना है। अपने स्वार्थ को हिन्दू राष्ट्र के स्वार्थ से हम एकरूप करदें, हमारा काम बन जावेगा। इसलिए संघ बार–बार कहता है, कि हिन्दू राष्ट्र की सेवा करने में हम किसी प्रकार का त्याग कर रहे हैं, इस वृथा अहंकार की भावना को छोड़ दो। समाज–प्रेम और कर्तव्य से परिपूर्ण जीवन बिताओ। ऐसा करने से समस्त हिन्दू समाज आप ही आप तुम्हारी ओर आकर्षित हो जायेगा।

हमारा दृढ़ निश्चय है कि जहां तक हो सके, शीघ्र ही हम संघ-कार्य को पूरा करेंगे। यह तो सीधी बात है कि हम जितनी अधिक शीघ्रता से कार्य करेंगे उतना ही कम समय हमें अपने उद्देश्य तक पहुँचने में लगेगा। अतः कार्य की गति हमें सैकड़ों गुना बढ़ानी चाहिए। लोग भले ही तुम्हारी निन्दा करें किन्तु यदि तुम्हारा मन साफ है तो निन्दा–स्तुति की परवाह करने की आवश्यकता नहीं। हमारे संगठन के कारण राष्ट्र पर होने वाले सुपरिणाम को देखकर निन्दकों के मुख लाज के मारे झुके बिना न रहेंगे। अपने समाज में संगठन निर्माण कर उसे बलवान तथा अजेय बनाने के सिवा हमें और कुछ नहीं करना है। इतना कर देने पर सारा काम आप ही आप बन जावेगा। हमें आज सतानेवाली सारी राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याएँ सरलता से सुलझ जावेंगी।

हमारा कार्य अखिल हिन्दू समाज के लिये होने के कारण उसके किसी भी अंग की उपेक्षा करने से कार्य न चलेगा। सभी हिंदू भाइयों के साथ चाहे वे किसी भी उच्च या नीच श्रेणी के समझे जाते हों, हमारा

व्यवहार प्रत्येक से प्रेम का होना चाहिए। किसी भी हिन्दू भाई को नीच समझकर उसे दुतकारना पाप है। कम से कम संघ में स्वयंसेवकों के मन में तो इस प्रकार की संकुचित कल्पना को स्थान न मिले। हिन्दुस्थान पर प्रेम करने वाले प्रत्येक हिन्दू से हमारा व्यवहार भाई जैसा ही होना चाहिए। लोग कैसा व्यवहार करते हैं और क्या बोलते हैं, इसका कोई महत्व नहीं। हमारा बर्ताव अगर आदर्श हो, तो हमारे सारे हिन्दू भाई हमारी ओर बराबर आकर्षित होंगे। सारा हिन्दू-समाज हमारा कार्य-क्षेत्र है। हम सभी हिन्दुओं को अपनावें। अपने निजी मान-अपमान की क्षुद्र भावनाओं को तज कर हमें प्रेम तथा नम्रता के साथ अपने समाज के भाईयों के पास पहुँचाना होगा। कौन सा पत्थरहृदय हिन्दू है जो तुम्हारे मृदुता तथा नम्रता के शब्दों को सुनने से इन्कार कर देगा।

अन्य लोग इस कार्य को चाहे जितना कठिन बतलायें, किन्तु तुम स्वतः कठिनाइयों का रोना न रोओ। हमें तो वह कार्य कर दिखाना है, जिसका परिणाम देखकर संसार को दाँतों तले अंगुली दबाकर ही रहना पड़ेगा। क्या तुम्हें पता नहीं कि संघ का प्रारम्भ कितने थोड़े से लोगों से हुआ? उन्हीं मुठ्ठी भर लोगों ने अपने सतत परिश्रम से संघ को बढ़ाकर ७०,००० से भी अधिक संख्या निर्माण की हैं। क्या उनके लिए कार्य में कोई कठिनाई ही न थी? अवश्य थी। किन्तु कठिनाई को चुपचाप पार कर वे कार्य को बढ़ाते गये। मुठ्ठी भर लोग जब संघ को इतना बढ़ा सके, फिर हम तो आज ७०,००० से अधिक संख्यामें हैं हम हजार गुना अधिक कार्य बढा सकते हैं। किन्तु उसके लिए पहले हम सभी लोगों को संघ से एकरूप हो जाना चाहिए। संघ के किसी भी कार्यकर्ता में इतनी शक्ति हो कि एक वर्ष की अवधि मिलने पर वह असंख्य स्वयंसेवक तैयार कर सके। जो कार्यकर्ता कार्यकुशल स्वयंसेवक निर्माण नहीं कर सकता, वह देश के लिए कुछ भी नहीं कर सकेगा। जीवित मनुष्य वही है जिससे अनेक जीव पैदा हो सकते हैं और सच्चा स्वयंसेवक भी वही है जो अनेक कर्तव्यशील स्वयंसेवक निर्माण कर सकता है। हम दावे से ऐसा कह सकें कि हमारे ७०,००० स्वयंसेवक सत्तर हजार शाखाएं निर्माण कर

सकते हैं। क्या हम आज यह दावा कर सकते है ? यह तभी होगा जब एक स्वयंसेवक एक शाखा के बराबर होगा।

संघ का निर्माण इस लिए नहीं हुआ कि हम देश की प्रगति में अड़चन या रुकावट डालें। हमें तो सिद्ध करना हैं कि जनता में संगठन के द्वारा देश में विराट शक्ति निर्माण की जा सकती है। इस बात के लिए हममें से हर एक को विचार करना चाहिए। हर एक को रात दिन यह सोचना चाहिए कि मुझे सदा नये नये मित्र किस तरह मिल सकेंगे और किस प्रकार मैं उन्हें संघ में सामिल कर सकूंगा। इस कार्य के लिए हमारे जीवन में तीव्र बेचैनी पैदा हो जानी चाहिए। हमें व्यग्र हो जाना चाहिए और अन्य कोई भी भात हमें अच्छी न लगनी चाहिए। यदि हम इस प्रकार अपने कार्य के पीछे पागल न हो सकें, तो अपना संघ 'संगठन' न रहते हुए, देश की अन्य संस्थाओं या 'दलों' जैसा एक मामूली 'दल' होकर रहेगा, जिसका देश को कुछ भी उपयोग न होगा। अपने कार्य की ओर अपने कर्तव्य के अतिरिक्त इस जीवन की अन्य किसी भी बात के प्रति हमें आकर्षित नहीं होना चाहिए। संघ के स्वयंसेवक के लिए, जिस ने देश तथा समाज की सेवा का महान व्रत ग्रहण किया है, सुख और सन्तोष अब कहां ? उसके लिए उसका कार्य ही सर्वस्व है जिसमें उसे जी जान से जुट जाना चाहिए। ताकि शीघ्र अपने उद्देश्य की पूर्ति होते हुए हम अपनी आँखों देख सकें। मुझे पूरा विश्वास है कि संघ का प्रत्येक स्वयंसेवक अपना कर्तव्य करेगा।

९०. संदेश—

कई दिन बाद मुझे आपके सामने भाषण देने का अवसर मिला है। यों तो संघ के सामने भाषण देने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। वास्तव में हमारे लिए बोलने के लिए बचा ही क्या है। हमें जिस राह पर कार्य करते हुए आगे बढ़ना है वह तो बिल्कुल साफ है। हमारे कार्य की रूप-रेखा बिल्कुल निश्चित है, उसे सम्पन्न करने के लिए हमें अधिकाधिक प्रयत्न मात्र करना है। हम लोग आपस में क्यों बातचीत करते हैं ? केवल

योंही बातचीत करने के लिए नहीं, अपितु एक दूसरे के विचार अवगत कर कार्य की गति बढ़ाने के लिए। अपने विचार एक दूसरे को समझाने के लिए जितना बोलना आवश्यक होता है उतना ही हम बोलते हैं।

संघ की आयु अब चौदह वर्ष की हो चुकी है। इस समय के अन्दर हमने जो कुछ भी कार्य किया है उसको हम सब लोग भली प्रकार जानते हैं। हमारे सामने जो बड़ी बड़ी बाधाएँ हैं उनका विचार करने पर यह दिखाई देता है कि सम्पन्न किया हुआ हमारा कार्य भी उनके परिणाम में कुछ कम नहीं। संघ ने प्रारम्भ में ही यह बात पहिचान ली थी कि यदि हिन्दुस्थान हिन्दुओं का देश है तो उसके उद्धार की पूरी जिम्मेवारी हम हिन्दुओं के ही सिर पर है। घर हमारा है अतः उसके प्रति अपनी जिम्मेवारी को हम किसी भी अवस्था में नहीं टाल सकते। यह आशा व्यर्थ है और अनुचित भी है कि बाहिरी लोग जिन्हें इस देश के विषय में न भक्ति है और न प्रेम; हमारी कुछ सहायता करेंगे। फिर जब केवल हमें ही अपना उद्धार करना है तब संगठन के सिवा हमारे लिए दूसरा चारा ही नहीं रहता। इसी बात को सामने रखते हुये संघ ने हिन्दुओं को संगठित करने का बीड़ा उठाया है। किन्तु अंगीकृत कार्य इतना सरल नहीं था। संघ के जन्म काल के समय की परिस्थिति बड़ी विचित्र सी थी। 'हिन्दुओं का हिन्दुस्थान' कहना उस समय निरा पागलपन समझा जाता था और हिन्दु-संगठन करना देशद्रोह करार दिया गया था। इस विषम परिस्थिति में भी हमारा कार्य बराबर बढ़ता ही गया। इसका एकमात्र कारण यही है कि अपने कार्यकर्ता निरन्तर कार्य करते रहे। लोगों की आलोचना, टीकाटिप्पणी तथा गाली बौछार की हमने तनिक भी पर्वाह न की। हमारी अखण्डित प्रयत्नशीलता तथा निष्ठा का ही परिणाम है कि आज 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का' यह घोषणा सर्वत्र गूंज रही है। मैं समझता हूं कि इसमें हमारी बड़ी भारी जीत है। वास्तव में सिद्धांतों की विजय सच्ची विजय है, फिर लोग हमें भला बुरा कुछ भी क्यों न कहें। अब तो जनता और नेताओं ने संगठन की आवश्यकता को मान लिया है। हम आज देखते हैं कि केवल

मुट्ठी भर उत्साही कार्यकर्ताओं के परिश्रम के फल-स्वरूप हमारा संगठन सारे भारतवर्ष में फैला जारहा है। आज ६०० से ऊपर उसकी शाखायें हो गई हैं और ७०,००० से भी अधिक स्वयंसेवक कार्य कर रहे हैं।

पर इतनी दौड़-धूप करके अंत में संघ को क्या सिद्ध करना है? इस विषय में केवल यही कहना पर्याप्त होगा कि संघ हिन्दू समाज को बलवान बनाना चाहता है। इस पर आप पूछेंगे कि कितना बलवान? बल की कसौटी कौन सी? मेरे विचार में बल की कसौटी यही हो सकती है कि हमारी शक्ति हमें तथा दूसरों को प्रतीत हो। यों तो शक्ति और दुर्बलता हमेशा सापेक्ष ही रहा करती है। हिन्दू-जाति आज दुर्बल है इसका अर्थ यही है कि अपने सिद्धांतों को मूर्त स्वरूप देने के लिए जितनी शक्ति हममें होनी चाहिये उतनी आज हममें नहीं है। संघ तो यह चाहता है कि हिन्दुओं को हम इतना शक्तिशालि बनादें कि समस्त संसार में किसी को भी हिन्दुओं पर आक्रमण करने का साहस न हो। जब हमारा सामर्थ्य संसार में अजय होगा तभी ऐसी परिस्थिति निर्माण हो सकेगी।

चौदह साल से हम लोग कार्य कर रहे हैं। यह अवधि कम नहीं कही जा सकती। हमें यह सोचना चाहिये कि हम अपने उद्देश्य के कितने निकट पहुँचे हैं? यह तो ठीक है कि इन चौदह वर्षों में हमने अपने कार्य का विस्तार भारतवर्ष के पंजाब, बंगाल, बिहार आदि प्रायः सभी दूर-दूर के प्रान्तों में भी किया है तथा मध्य-प्रांत और बम्बई प्रदेश के प्रत्येक जिले और तहसील में हमारी शाखाएँ सुचारु रूप से कार्य कर रही हैं, किन्तु वास्तव में प्रश्न यह है कि क्या हम लोगों ने हिन्दुओं में यह विश्वास निर्माण कर दिया है कि इस संगठन द्वारा उनकी शक्ति बढ़ रही है? क्या इस संगठन के द्वारा उन्होंने आत्म-शक्ति का कुछ अनुभव किया है? केवल हमारे जिले या प्रांत का ही उदाहरण लीजिये। क्या हम यहां के लोगों में अपने कार्य द्वारा अपने संगठन के प्रति विश्वास और आदर के भाव अभी तक निर्माण करने में सफल हुए हैं? हमे यह न भूलना चाहिये कि अभी तक हम न स्वयं को और न दूसरों को अपने संगठन की शक्ति का अनुभव करा सके हैं। इस समय तक

हमें इतना बढ़ जाना चाहिये था कि लोग दांतों तले उँगली दबाते। यह ठीक तरह से समझलो कि संघ न तो व्यायामशाला है न मिलिटरी स्कूल ही है। संघ है हिन्दुओं का राष्ट्र-व्यापी अभेद्य संगठन जिसे फौलाद से भी सुदृढ़ होना चाहिये। हां यदि हम किसी क्लब या शैक्षणिक संस्था के रूप में होते तब तो आजकी भी प्रगति हमारे लिए गौरवास्पद मालूम होती; किन्तु हमारा उद्देश्य इन संस्थाओं की अपेक्षा कितना भिन्न, उच्च और महान् है! इसलिये मैं बार बार यही बात दोहराता हूं कि आप अपने आदर्श को सामने रखते हुए आज की अपनी प्रगति का विचार कीजिये। हमने कितनी प्रगति की है? हमारी जितनी प्रगति होनी चाहिये थी उसकी तुलना में आज हम कहां हैं? कितने पिछड़े हुये हैं? इसका विचार होना चाहिये।

संघ कोई सामाजिक आंदोलन तो है नहीं। यह आंदोलन है समाज के उन लोगों का, जो अपने को बुद्धिमान्, आदर्शवादी तथा जिम्मेदार समझते हैं। तब तो यहां का प्रत्येक स्वयंसेवक कार्यकर्ता और नेता होने की योग्यता का होना चाहिये। क्या वस्तु-स्थिति ऐसी ही है? हम सबको अपनी दृष्टि अंतर्मुख करके, दिल टटोल कर, कुछ आत्म-निरीक्षण करना चाहिये, ताकि हमें पता लग जाय कि हम कहां खड़े हैं।

संघ के कार्यकर्ता, नेता और अधिकारीगण पर्याप्त संख्या में निर्माण हों, इसलिये हम प्रतिवर्ष अधिकारी-शिक्षा-शिबिर चलाया करते हैं। जिनमें भाग लेकर हम सब लोग योग्य कार्यकर्ता तथा अधिकारी बन सकते हैं। किन्तु कितने लोग सच्चे दिल से इनका लाभ उठाते हैं? बहुत ही थोड़े। ऐसा क्यों होता है? उसका कारण एक ही है कि हम लोग गम्भीरता-पूर्वक विचार नहीं करते; आत्म-निरीक्षण तो करते ही नहीं।

वास्तव में प्रत्येक स्वयंसेवक सदा यह सोचता रहे कि वह संघ का दैनिक कार्य कितना करता है और योग्य स्वयंसेवकों की संख्या कितनी बढ़ाता है। सब लोगों के समान हम भी दैनिक कार्य तो करते हैं किन्तु संख्या बढ़ाने के विषय में क्या हम कुछ कर रहे हैं? आपको कभी नहीं भूलना चाहिए कि संघ एक जीता-जागता संगठन है और उसे अबाधरूप से बढ़ते ही रहना चाहिए। तभी हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो सकेगी।

संगठन की वृद्धि जोरों से और निरंतर होती जाय तभी ध्येय सिद्ध हो सकेगा; अन्यथा नहीं। क्या उस स्वयंसेवक को भी आप सच्चा स्वयंसेवक कहेंगे जो कि साल भर में भी पांच नये स्वयंसेवक नहीं ला सकता? पर वस्तुस्थिति क्या है? आप लोगों में से ऐसे कितने लोग निकलेंगे जो प्रतिवर्ष पच्चीस-पचास स्वयंसेवकों को संघ में ले आते हों? बहुत ही थोड़े। इसका एक ही कारण है—स्वयंसेवक-भरती का काम लगभग बंद सा हो गया है। ऐसा क्यों हुआ? क्या आज भी हमारे शहरों में हजारों नवयुवक यों ही सैर-सपाटे लगाते हुए नहीं दिखाई देते? हम उन्हें अपने संगठन में क्यों नहीं लाते? मैं मानता हूं कि बड़ी लगन और उत्साह के साथ काम करनेवाले कुछ कार्यकर्ता हममें अवश्य हैं और उन्हीं के भरोसे हमारा कार्य चल भी रहा है। किन्तु उनकी संख्या कितनी कम है? उनके अतिरिक्त दूसरे लोग; जो आज संघ में हैं, वे आज क्या कर रहे हैं? हममें से प्रत्येक को खुले दिल से स्वयं को ही यह प्रश्न पूछना चाहिये, कि 'मैं कितने लोगों को अपना मित्र बनाता हूं? संघ में कितने स्वयंसेवक मैं लाया हूं?' मुझे भय है कि इन प्रश्नों का उत्तर अत्यन्त निराशा-जनक ही मिलेगा। स्वयंसेवक बंधुओ! तुमने एक अत्यन्त पवित्र व्रत लिया है; उसका स्मरण करो। तुमने हिन्दू राष्ट्र को स्वावलम्बी तथा निर्भय बना देने का निश्चय किया है और तुम अपने को सच्चे राष्ट्रवादी मानते हो। किन्तु क्या तुमने इसका भी विचार किया है, कि अपने ध्येय और व्रत की तुलना में तुम्हारी तैयारी किस दर्जे की है? कैसी ग्लानि की बात है कि एक वर्ष के अन्दर पांच मित्रों को संघ में लाना तुम्हारे लिए कठिन सा मालूम होता है। क्या यही है तुम्हारी योग्यता? थोड़ी ईमानदारी के साथ सोचो तो सही। स्वयं अपनी आत्मा के साथ वंचना न करो। क्या हम ली हुई प्रतिज्ञा का पालन निःस्वार्थ-बुद्धि से तन-मन-धन-पूर्वक और ईमानदारी के साथ कर रहे हैं? अपनी प्रियतम हिन्दू-जाति को संसार में अजेय तथा गौरवशाली बनाने के लिये दिनप्रति-दिन हम अपने को कितना घुलाते हैं? कौनसा कार्य करते हैं? थोड़ा अपना दिल टटोल कर देखो तो—क्या इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए मन में कुछ बेचैनी सी भी अनुभव करते हो? कुछ जी भी तड़पता है?

और हमारा दावा तो है—इसी पार्थिव शरीर से, इन्हीं आंखों से (याच देहीं याच डोळां) अपने कार्य-सिद्धि का महोत्सव देखने का। यह कैसे संभव होगा ? संघ यह नहीं चाहता कि किसी क्लब या पाठशाला के समान यह भी सदियों तक जैसे-तैसे चलता ही रहे। संघ की तो धधकती हुई आकांक्षा है कि हिन्दुत्व की धू-धू करती हुई ज्वालाएं देखते देखते देश के कोने कोने में फैल जाएं।

कई लोग कहते हैं, कार्य बड़ा कठिन है, मार्ग में अनन्त कठिनाईयां हैं। मैं कहता हूं, कठिनाईयाँ भले ही हों; हमें तो पहिले से ही यह पता होना चाहिए कि हमारा मार्ग कंटकाकीर्ण है। किसने ऐसी आशा की थी कि इस पथ पर गुलाब की पंखुड़ियां बिछी होंगी? राष्ट्र को अपना पूर्ण गौरव प्राप्त करा देना थोथी गप्प नहीं, न वह टके सेर बिकने वाली भाजी है। वह तो अत्यन्त अनमोल रत्न है, जिसे खरीदने के लिए उसकी पूरी कीमत देनी पड़ती है। एक पाई भी कम देने से काम नहीं चलता। अपने देश के विगत वैभव को प्राप्त करने के लिए आपके सिवा और कौन सर्वस्व-त्याग और अनवरत पुरुषार्थ कर सकेगा ? भारत की भाग्य-लक्ष्मी को प्रसन्न करने वाले तुम्हें छोड़ और कौन हो सकते हैं ? यह तो तुम्हें और तुम्हें ही करना होगा। क्या तुम्हारी यह धारणा है कि जिनमें केवल हजार दो हजार स्वयंसेवक हों, ऐसी कतिपय शाखाएं जैसी-तैसी चला देने से ही काम चलेगा ? क्या आप दूसरों से आशा रखते हैं, कि वे आकर आपके देश का गौरव बढ़ावेंगे ? तो फिर आप आखिर हैं किसलिए ?

वास्तव में बात यह है, कि हम सब कुछ कर सकते हैं। दस-पांच स्वयंसेवक लाने की तो बात ही क्या, हम पहाड़ को भी चूर्ण कर सकते हैं। स्वयंसेवक भरती का काम तो बच्चा भी कर लेगा। प्रश्न केवल एक ही है। हमें आलस्य छोड़ना होगा। वही हमारा वास्तविक शत्रु है। केवल आलस्य के कारण, संघस्थान पर जाने के अतिरिक्त और कोई विशेष काम नहीं कर पाते। आलस्य में समय को बरबाद करना छोड़ यदि हम अपनी सारी शक्तियां इस कार्य में लगा दें, तो हमारी प्रगति आश्चर्यजनक हो सकती है। आलस्य तज देने के बाद कार्य प्रारंभ हो जाता है। प्रारंभ

में इस बात का महत्त्व नहीं रहता, कि आपको कार्य करने का ढंग मालूम है, अथवा नहीं। आप बुद्धिमान हैं। आप सारी बातों को सोच समझकर विचार से काम ले सकते हैं। समाज में जाकर लोगों के साथ किस प्रकार बर्ताव करना चाहिए, यह बात आप भली भांति जानते ही हैं। शालाओं विद्यालयों, और अन्य स्थानों में कैसे व्यवहार करना, घरवालों तथा पड़ोसियों का दिल अपनी ओर किस प्रकार खींच लेना, मित्रों और सम्बन्धियों पर किस प्रकार अपने गुणों का प्रभाव डालना, इन सारी बातों से आप परिचित हैं। फिर भी कार्य तेजी से क्यों नहीं बढ़ता ?—बस एक ही कारण है, आपके रोम रोम में व्याप्त आलस्य। इसे नष्ट करो और फिर देखो, तुम में कैसा अभूतपूर्व परिवर्तन हो जाता है।

आओ, हम सब एक साथ मिलकर दुर्दम्य उत्साह के साथ अपने कार्य में एकदम प्रवृत्त हों। यदि प्रत्येक स्वयंसेवक निरंतर सचाई के साथ प्रयत्न करें तो वह दस–बीस तो क्या, चाहे जितने नये मित्र बनाकर संघ में ला सकेगा। प्रत्येक को अपने मन में पूरा निश्चय कर लेना चाहिए कि मैं इस वर्ष कम–से–कम दस स्वयंसेवकों को संघ में लाकर ही रहूंगा। मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि तुम अपना निश्चय पूरा कर सकोगे। किन्तु कार्य इसी क्षण से आरम्भ कर देना होगा। यदि उस परीक्षार्थी के समान, जो परीक्षा बिल्कुल समीप आजाने पर दौड़धूप मचाता है, कार्य करने की चेष्टा करोगे तो आखिर खाली हाथ मलते ही रहना पड़ेगा। आज ही कार्य का प्रारंभ कर दो और लगातार उसे करते रहो। 'आगे चलकर करेंगे' इस विचार में रहोगे तो धोखा खाओगे। भविष्य पर किसी भी प्रकार निर्भर रहना उचित नहीं। कौन कह सकता है, आगे चलकर परिस्थिति कैसा पलटा खाने वाली है! पता नहीं आगामी काल में संकट के पहाड़ हमारे सिर पर कब टूट पड़ेंगे ? कार्य करने का समय सदा आज ही का होता है। कल के भरोसे रहने वाला तो धूल में मिल जायगा। इसीलिए मैं कहता हूं, कि कार्य का प्रारम्भ आज ही करदो। कार्य की निश्चित मर्यादा मन में तय कर लो और उसके अनुसार बराबर काम में लगे रहो, दस–बीस या पच्चीस जितने भी स्वयंसेवक लाने हों, उनकी खोज में अभी से निकलो परंतु याद रखो दस ही क्यों न हो,

किन्तु वे दस स्वयंसेवक कट्टर, प्रभावशाली और गुणवान होने चाहिये, जो संघ के लिए बहुत ही मूल्यवान सिद्ध हों।

इस कार्य को यदि हम आज न करें तो भविष्य में हमें सफलता प्राप्त होनी असम्भव है। हमने यह तो कभी नहीं कहा था कि हम दो दिन या दो महीनों में स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। परन्तु साथ ही साथ हम यह भी नहीं चाहते कि हम पीढ़ियों और सदियों तक काम ही करते रहें और उसका फल कुछ भी न हो। हमारा तो प्रयत्न हैं कि हमारे जीते जी हम अपने उद्देश्य की पूर्ति देख सकें, और यह विल्कुल सयुक्तिक भी है।

हमारा कार्य किसी से छिपा हुआ नहीं हैं। अब तो हम जनता के सामने प्रकाश में आ चुके हैं और जनता हमारे कार्य की प्रगति को विशेष ध्यानपूर्वक देख रही है। हमारे चारों ओर शत्रु तथा मित्र फैले हुए हैं। मित्रों को तो हम अपनाएंगे ही। किन्तु जो अपने आपको हमारे शत्रु समझते हैं, उनसे भी द्वेष करने की हमें कोई आवश्यकता नहीं। उनपर तो हमें दया आनी चाहिये। जब हम लोग लगन के साथ काम करते हुए आगे बढ़ेंगे, तब उन्हें हमारे रास्ते से आप ही एक ओर हट जाना पड़ेगा। हमारी शक्ति का प्रचण्ड आवेग सह न सकेंगे।

लोग कहते हैं कि आज का समय भीषण और संकटमय है। किन्तु मैं कहूंगा कि आज जैसी सर्वथा अनुकूल परिस्थिति इसके पहिले कभी नहीं आई थी। बस यही समय है हम लोगों के लिये जी–जान से प्रयत्न करने का। इससे बढ़कर अनुकूल समय इसके पूर्व कभी न था, और भविष्य में भी कभी ऐसा समय प्राप्त होगा या नहीं, इसमें शंका ही है। जो कुछ काम सचमुच करना हो, वह इस समय सारी शक्ति की बाजी लगाकर कर लो। क्योंकि शायद आगे चलकर कुछ भी करना संभव न होगा। सारा संसार आज आंधी के वेग के समान आगे बढ़ता जा रहा है। हम पिछड़ जायेंगे तो कैसे चलेगा? ऐसा भय मत मानो कि समय कठिण आ गया है। कदम पीछे न रक्खो बराबर आगे ही बढ़ते जाओ। प्रतिकूल परिस्थिति को परास्त करके जो कार्य करता है, वही अन्त में बाजी मारता है और दुनियां में उसी का नाम होता है। और आप

लोगों के लिये डरने की बात ही क्या है ? भगवान् का वरद हाथ हमारे सिर पर है, क्योंकि हमारा कार्य सच्चा ईश्वरीय कार्य है। भगवान् के और सन्तों के शुभाशीष हमारे साथ है। हम चौदह वर्षों से निरन्तर सफलता प्राप्त करते आये हैं। हमारा पग कभी पीछे पड़ा ही नहीं फिर भला आज की अनुकूल परिस्थिति में ही हमारा पग पीछे कैसे रहेगा ? हमें तो दूने उत्साह से आगे ही बढ़ना चाहिये और इस भांति हम बराबर बढ़ेंगे। हमारी अन्तिम विजय के सम्बन्ध में मैं बिल्कुल निःशंक हूँ। हमारा कार्य इसके आगे विलक्षण तेजी के साथ उमड़ते हुए बढ़ने के अतरिक्त पीछे न रहेगा।

★ ★ ★

७ : सूक्ति-संग्रह

१—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मतलब है—राष्ट्र की सेवा करने के हेतु स्वयंप्रेरणा से—स्वयं ही—अग्रसर होनेवाले लोगों द्वारा राष्ट्रकार्य के लिए स्थापित संघ। अपने राष्ट्र की सेवा करने के लिए प्रत्येक राष्ट्र के लोग इस तरह का संघ निर्माण करते हैं। हमारा यह प्यारा हिंदुस्थान देश—यह पवित्र हिंदू राष्ट्र—हमारी कर्तव्य-भूमि होने के कारण हम लोगों ने अपने राष्ट्रीय हित की रक्षा के लिए इस संघ को अपने देश में स्थापित किया है जिसके द्वारा हम राष्ट्र की हर प्रकार से उन्नति करना चाहते हैं।

२—हमें पहले इस बात का विचार करना चाहिए कि 'राष्ट्र' का अर्थ क्या होता है? किसी घने जंगल को, जलहीन मरुस्थल को या निर्जन भूभाग को राष्ट्र नहीं कहते। जिस भूभाग पर एक विशेष जाति के, विशेष धर्म के, विशेष परम्परा वाले, विशेष विचार-धारा वाले और विशिष्ट इतिहास वाले लोग एकत्रित रहते हैं, वह भूभाग 'राष्ट्र' माना जाता है। ऐसे सजातीय लोगों की हिताहित भावनाएँ एक सी होने के कारण, उनमें एक विशिष्ट प्रकार की एकात्मता होती है और उनकी दिनोंदिन समृद्धि होती जाती है। हम ऐसे लोगों के समूह को 'राष्ट्र' नाम नहीं दे सकते जो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों वाले भिन्न-भिन्न विचार-धाराओं वाले हों; तथा जिनके इतिहास भिन्न हों, हिताहित कल्पनाएँ परस्पर विरोधी हों, परस्पर शत्रु-भाव मानते हो; जिनके आपसी संबंध भक्ष्य-भक्षक के रहे हो और जिनके एकत्रित रहने के मूल कारण भी एक से न हों।

३—अन्य राष्ट्रों के आंदोलनों से हिन्दुस्थान के आंदोलनों की तुलना करना अयोग्य होगा। क्योंकि हम हैं पराधीन और वे राष्ट्र हैं स्वतंत्र। और हम विदेशों का मुंह ताके भी किसलिए ? आप अपने ही इतिहास की ओर जरा दृष्टिपात करें तो आपको उसमें न जाने कितने स्फूर्ति-दायक प्रसंग दिखाई पड़ेंगे। अपने ही इतिहास के आधार पर खड़े होने की हमें आदत होनी चाहिए। इसके साथ ही साथ संसार की ओर दुर्लक्ष करने से भी काम न चलेगा। आज हम छत्रपति शिवाजी के युग में नहीं रहते। हम आज ऐसे युग में रहते हैं जिसमें मनुष्यों का तो क्या वृक्षों तक का हिसाब रखा जाता है। हर रास्ता नापा जा चुका है, मीलों में ही नहीं इंच इंच भी। इसलिए बाहिरी संसार की ओर से आंख मूंदकर जीना भी असंभव है। आप स्फूर्ति लीजिये अपने ही इतिहास से। इसके लिए हमें दुनियां की ओर ताकने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। परन्तु अन्य बातों में सारी दुनियां की ओर ध्यान देना चाहिए और परिस्थिति को भली भांति समझ लेना चाहिए।

४—संघ को नया झंडा खड़ा नहीं करना है। भगवाध्वज का निर्माण संघ ने नहीं किया। संघ ने तो उसी परम पवित्र भगवाध्वज को राष्ट्रीय ध्वज के रूप में स्वीकार किया है जो कि हजारों वर्षों से राष्ट्र और धर्म का ध्वज था। भगवाध्वज के पीछे इतिहास है, परंपरा है। वह हिन्दू संस्कृति का द्योतक है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का निर्माण हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू राष्ट्र की रक्षा के लिए हुआ है। इसीलिए जो जो वस्तुएं इस संस्कृति की प्रतीक हैं, उनकी संघ रक्षा करेगा। भगवाध्वज हिन्दू धर्म और हिन्दू राष्ट्र का प्रतीक होने के कारण उसे राष्ट्र ध्वज मानना संघ का कर्तव्य है।

५—हिन्दू समाज में पैदा होने के कारण इस संगठन के कार्य की जिम्मेवारी हमारे सिर पर है। उसे हमको पूरी तरह से निभाना होगा। यह जिम्मेवारी दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़ती चली जा रही है। हमारा कार्यक्षेत्र बड़ा विशाल है। वह किसी एक खास गांव या प्रांत तक ही सीमित नही। आसेतु हिमाचल अखिल भारतवर्ष हमारी कार्यभूमि

है। हमारा दृष्टिकोण विशाल होना चाहिये। हमें ऐसा लगना चाहिये कि समूचा भारतवर्ष हमारा घर है। हम किस सीमा तक और कौनसा कार्य कर सकते हैं यह पहले निश्चित कर उसके अनुसार हम अपने जीवन का आयोजन करें और प्रतिज्ञापूर्वक उस कार्य को पूरा करके ही रहें।

६—संघ-कार्य है हिन्दू समाज को अपने हाथों अपना कल्याण साधन कर सकने योग्य समर्थ बनाना। हमें यह अजीब लत लग गई है कि अपने पेट में तो चूहे डंड पेलते हैं और हम दूसरों की भूख शान्त करने के हेतु पूछ ताछ करने में व्यग्र रहते हैं। इस लत का नाश हुए बिना उन्नति होना असम्भव है। हिन्दू समाज के कल्याण का अर्थ है उसका स्वसंरक्षणक्षम होना।

७—हमें नवीन कुछ नहीं करना है। हमारे पूर्वजों ने जिस भांति समाज और संस्कृति की सेवा की, जो ध्येय अपने सामने रखे और उनकी प्राप्ति के लिए दिन रात प्रयत्न किये, उन्हीं ध्येयों को उसी भांति हमें भी सिद्ध करना है उनका अधूरा रहा कार्य पूरा कर राष्ट्र सेवा करनी है।

८—जो जो विदेशी लोग हिन्दु संस्कृति का विध्वंस कर हिन्दुओं को सदा के लिए गुलामी में जकड़ने के उद्देश्य से हिन्दुस्थान में आये और आज यहां रहते हैं, उन सभी के भीषण आक्रमणों से हिन्दू समाज की रक्षा करने की, इस कार्य में हर प्रकार के कष्टों को सहने की, आनेवाले संकटों का सामना करने की इतना ही नहीं, सदा प्राणार्पण करने को उद्यत रहने की मनोवृत्ति सारे समाज में उत्पन्न कर, समाज को संगठित बनाने का कार्य संघ को करना है।

९—संघ का संस्कारों पर अत्यन्त विश्वास है। जैसे संस्कार, वैसी ही वृत्ति बनती है, और एक ही वृत्ति के अनेक लोगों के एकत्रित होने से ऐसा वातावरण उत्पन्न होता है जो संगठन के लिए पोषक हो। सारे देश भर में इस तरह का पवित्र, श्रद्धा-युक्त, ध्येय-निष्ठा के रंग में रंगा हुआ, निराशा को नष्ट करनेवाला, हिम्मत बढ़ानेवाला, स्फूर्तिदायक वातावरण तैयार

करो। स्वयंसेवक जहां जाय वहां वह वातावरण अपने साथ ले जाय। यह वातावरण शुद्ध रखने के लिये स्वयंसेवक अपने पंच प्राणों से अहोरात्र जागरूक रहें। एकवार ऐसा कार्यक्षम वातावरण बनाये रखने और बढ़ाने की वृत्ति उत्पन्न भर हो जाय, फिर तो संघ को अन्य किसी का डर नहीं।

१०—संघ का कार्य और संघ की विचार-धारा हमारा कोई नया आविष्कार नहीं है। संघ ने तो अपने परम पवित्र सनातन हिन्दू धर्म, अपनी पुरातन संस्कृति, अपने स्वयं-सिद्ध हिन्दू राष्ट्र और अनादि काल से प्रचलित परम पवित्र भगवाध्वज को ज्यों के त्यों आप लोगों के सामने रखा है। उपर्युक्त बातों में नव चेतना भरने के लिए संघ जैसी आवश्यक हो, वैसी कार्य-पद्धति समयानुसार अपनावेगा। इसके अलावा और कोई भी नई बात स्वीकार करने को संघ तैयार नहीं।

११—संघ ने किसी व्यक्ति विशेष को अपने गुरुस्थान पर न रख कर परम पवित्र भगवाध्वज को ही गुरु माना है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति चाहे जितना महान् हो तो भी निरन्तर अचल और पूर्ण नहीं रह सकता। इसलिए व्यक्ति विशेष को गुरु मानकर अपनी स्थिति विचित्र सा कर लेने की अपेक्षा हमने उस जयिष्णु और प्रभविष्णु-भगवाध्वज को गुरु माना है, जिसमें हमारा इतिहास, परंपरा, राष्ट्र के स्वार्थ त्याग, इतना ही नहीं, राष्ट्रीयत्व के सभी मूल तत्त्वों का समन्वय हुआ है। इस अटल और उदात्त ध्वज से हमें जो स्फूर्ति प्राप्त होती है वह अन्य किसी भी मानवीय विभूति से प्राप्त होने वाली स्फूर्ति की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

१२—"अहिंसा परमो धर्मः" यह तत्त्व हिन्दू समाज के रोम रोम में व्याप्त है। इसलिए सब को अहिंसा का पाठ सिखाने का दायित्व भी हिन्दुओं पर ही आता है। पर यदि हम यह अभिलाषा करते हैं कि दूसरे लोग हमारा सदुपदेश सुनें तो हममें योग्य सामर्थ्य होना ही चाहिए। आज हिन्दु समाज दुर्बल है और हिंसक वृत्ति के लोग कमजोर समाज की कौड़ी भर भी परवाह नहीं करते। इसलिए यदि हम अहिंसा मंत्र का घूंटा हिंसात्मक वृत्ति के लोगों के गले उतारना चाहते हैं तो हमें इतना सामर्थ्य-शाली बनना चाहिए कि जिससे उन लोगों पर हमारे उपदेश का परिणाम

हो। और यदि हमारी यह इच्छा है कि हिन्दुस्थान में अहिंसा का साम्राज्य फैले तो हिन्दू समाज की दुर्बलता को नष्ट कर उसे बलशाली बनाना नितान्त आवश्यक है।

१३—हम लोग इस संघ के भिन्न भिन्न अवयव (घटक) हैं अर्थात् संघ पूर्ण रूप से हमारा है। जो सम्बन्ध अपने शरीर और उसके अंगों में है वही सम्बन्ध संघ में और हम में है। शरीर के सारे अवयवों का विकास एक सा और एक ही समय होता जाय तभी शरीर समर्थ बन कर सुघड़ प्रतीत होने लगता है। कल्पना कीजिये कि हम ऐसे व्यायाम करते हैं जिनसे केवल छाती और हाथ सुदृढ़ बनते हैं परन्तु पैरों की पूरी तरह उपेक्षा ही करते हैं तो फिर मोर के समान हमारे भी पैर कृश और दुर्बल हो जायेंगे और उस शरीर में ठीक नहीं जचेंगे जो कि व्यायाम के कारण बलशाली और प्रचण्ड बन चुका है। इतना ही नहीं समय पड़ने पर ये कमजोर पैर पराक्रम में तुम्हारा साथ भी न दे सकेंगे। ऐन मौके पर तुम्हें धोका खाना होगा। पचीस तीस मील पैदल चलना हो तो आपके ये पैर लड़खड़ाने लगेंगे, पहाड़ी या पर्वत पर चढ़ना हो तब ये पैर पीछे हटना चाहेंगे और तुम्हारे हाथ जिन महान् पराक्रमों के लिये फड़क उठेंगे उन्हें ये पांव पूर्ण न होने देंगे। हम लोग यदि संघ के हाथ पांव हैं तो क्या हम सभी की एक साथ एक सी उन्नति न होनी चाहिए? और इसे सिद्ध करने के लिये क्या हर एक का संघ के सभी कार्यक्रमों में नियमित रूप से भाग लेना आवश्यक नहीं है?

१४—एक बार हमारे अन्तःकरण में यह भाव उत्पन्न हो जाव, कि हमारे देश का विपन्नावस्था से उद्धार करने के लिये ईश्वर ने जिन जिन पुरुषों की योजना की है उनमें हम भी एक हैं। ऐसी आत्मानुभूति होने पर हम स्वाभाविकतया अपनी जिम्मेदारी का महत्त्व समझ कर अंगीकृत कार्य को पूरा करने के लिये अपनी सभी शक्तियां केन्द्रित कर प्राणार्पण से प्रयत्न करते हैं और फिर निम्न पंक्तियां हमारा ध्येय वाक्य बन जाती हैं—

" नहीं नर-देही का भरोसा, कब आयुष घट होवे रीता?
आवे प्रसंग कैसा कौन जाने?

इसलिए रहना सावधान ! यथा शक्ति करते जाना काम,
स्वदेश भक्ति से भर देना–भूमंडल ।"

१५—संगठन शास्त्र में अभिमान, ड़ींग, बलप्रयोग या व्यक्तिगत बड़प्पन के लिये स्थान रह ही नहीं सकता। संगठन शब्द से यही ध्वनित होता है कि उसमें व्यक्तिगत अभिमान का अस्तित्व संभव ही नहीं। अपने व्यक्तित्व के टट्टू को जहां तहां आ खड़ा करने से संगठन नहीं हो सकता। परन्तु साथ ही संगठन के लिये आदर्श व्यक्तित्व के गुणों की अत्यन्त आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य क्षेत्रों में आपके गुणों का भिन्न भिन्न प्रकार से आदर होगा और उन गुणों के कारण आप कीर्तिमान बन सकेंगे। परन्तु वे गुण सार्थक तभी होंगे जब कि आप अपना सर्वस्व संगठन के कार्य में लगा देंगे।

१६—तुम्हें अपने जीवन का आयोजन इसी ढ़ंग से करना चाहिये कि जिसमें संघ–कार्य सबसे प्रमुख रहेगा। तुम पर यह कहकर मुँह छिपाने की बारी नहीं आनी चाहिये कि मेरी अपनी परिस्थिति के अनुसार मुझसे जो कुछ थोड़ा बहुत बनता है वह करता हूं। मैं यह नहीं कहता कि तुम नौकरी अथवा गृहस्थी मत करो। किन्तु इतना भर जरूर कहता हूं कि ऐसी ही नौकरी ढूँडो, जिसमें तुम संघ कार्य की ओर ध्यान दे सको। वास्तव में तो तुम्हें यह सिद्ध कर देना चाहिये कि नौकरी करने पर भी नौकरी न करने वाले की अपेक्षा तुम ज्यादा कार्य कर सकते हो। घरबार के फन्दे में न पड़नेवाले जीव की अपेक्षा घरबार गृहस्थी को पूरी तरह से निभा कर भी मैं संघ–कार्य ज्यादा करता हूं यह कहने की जिसमें गुंजाइश रहे, इस हद तक तुम्हारा आचरण ध्येयनिष्ठ होना चाहिये। सारांशतः तुम्हारा बर्ताव हमेशा इसी तरह का होना चाहिये कि तुम स्वयं अथवा दूसरे लोग यही कह सकें कि क्या तुम्हारी नौकरी, क्या तुम्हारी गृहस्थी, तुम्हारा सब कुछ संघ के ही लिए है।

१७—वास्तविक एकता उन्हीं लोगों की हो सकती है, जो कि समान आचार-विचार वाले, समान परम्परा-वाले, समान संस्कृति वाले और समान ध्येय-युक्त होते हैं। हम लोगों में चाहे जितने ऊपरी मतभेद दिखाई दें

परन्तु हम सारे हिन्दू तत्त्वतः एक राष्ट्र हैं। हमारी धमनियों में एक सा रक्त बह रहा है। हमारी पवित्र भाषा एक है। हमारे राजनीति-शास्त्र, समाज-रचना और तत्वज्ञान भी एक हैं। इस प्रकार हमारे संगठन की नींव शास्त्र-शुद्ध है।

१८—अपने से दुर्बल जीवों पर आक्रमण करना संसार के प्राणि-मात्र का सहज स्वभाव है। 'क्योंकि मनुष्य प्राणी अन्य प्राणियों की अपेक्षा उन्नत है, उसे इस पशुवृत्ति को छोड़ देना चाहिए, यह बात सिद्धांत के तौर पर कहने भर के लिए यद्यपि मधुर लगती हो, परंतु प्रत्यक्ष आचरण में सिद्ध करने का समय अभी बहुत दूर है। तबतक निसर्ग-प्रवृत्ति के अनुसार दुर्बल जीवों पर होने वाले प्रबलों के आक्रमणों का तांता बराबर पहले जैसा लगा रहेगा। इसमें सच्चा दोषी तो वही समाज है जो स्वयं दुर्बल रह कर पड़ोस के दूसरे बलवान समाज की आक्रमणकारी प्रवृत्तियों को उत्तेजित करता है। इस प्रकार के आक्रमणों की जड़ में दुर्बल समाज की दुर्बलता ही प्रायः पाई जाती है। संसार की शांति को भंग करने का पाप भी ऐसे दुर्बल समाज के माथे ही पड़ता है। इसीलिए आक्रमणकारियों पर दोषारोपण करने में व्यर्थ समय न खोते हुए प्रकृति के उपर्युक्त नियम को ठीक ठीक समझ कर संसार की अशान्ति का मूल कारण, अपनी दुर्बलता को हर प्रयत्न से दूर करना यही दुर्बल समाज का परम कर्तव्य होता है।

१९—संघ के प्रत्येक स्वयंसेवक को आकर्षण का केन्द्र बनना चाहिए। पांच-पचीस लोगों को सदैव अपने आसपास आकृष्ट कर रखने की कला में वह प्रवीण होना चाहिए। उसमें एक न एक गुण पूरी मात्रा में होना ही चाहिए। जिसके शब्दों में अमृत बरसता हो, परिस्थिति पहचान सकने की शक्ति हो और कौन किस काम में उपयोगी हो सकता है, इसकी पूरी परख करके अमुक व्यक्ति को अमुक काम पर नियुक्त करने की कुशलता हो, वही संगठन कर सकता है।

२०—हरएक को यह सोचना चाहिए कि मैं संघ-कार्य कितना और किस भांति कर रहा हूं। इस प्रकार सोच-विचार कर कार्य करना चाहिए। यों ही बिना समझे बूझे कुछ न कुछ करते रहना अनुचित है।

संघ-कार्य, संख्या वृद्धि और गुण-निर्माण, इन दोनों दृष्टियों से किया जाना चाहिए। यद्यपि संख्या बढ़ाना आवश्यक है तो भी साथ ही साथ हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वह संख्या ध्येयनिष्ठ किस प्रकार होगी। जो नवीन स्वयंसेवक आवे उनमें ध्येयनिष्ठा उत्पन्न करनी चाहिए और पुरानों की ध्येयनिष्ठा को और ओप (पालिश) देकर अधिकतर निर्मल बनाते जाना चाहिए। यह प्रत्येक स्वयंसेवक का कर्तव्य है।

२१—यदि कभी भूल से आपके मित्र को भी दोषी ठहराया जाय तो भी उसका पक्ष न लो। यदि इस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हों कि मित्रप्रेम निभाया जाय या संघ-प्रेम अथवा कुटुम्ब या संघ कार्य, तो आपको ऐसा ही उत्तर देना चाहिए कि पहले संघ और मित्र, बन्धु, कुटुम्ब आदि इसके बाद। संघ के अतिरिक्त सुख:दुख की चाहे जो बात हों, यदि संघ के लिए उसे ठुकराना आवश्यक हो तो नि:संकोच ठुकरा दो। संघ में अलग अलग गुट न बनाओ। सारा संगठन अपना है। उसी के लिए आपको जीना है और उसी के लिए मरना, यही सोच कर आपको व्यवहार करना चाहिए।

२२—निरुपद्रविता हम लोगों में एक सद्‌गुण माना जाता है। सदा चुप रहनेवाला मनुष्य लोगों के द्वारा बड़ा सज्जन माना जाता है। सज्जन कौन है ? लोग कहते हैं—सज्जन वही है जो औरों के पचड़े में कभी नहीं पड़ता, स्नान के बाद भोजन और फिर ऑफिस या दूकान उसके पश्चात पुन: भोजन और सोना जिसका दैनिक कार्यक्रम है। लोग आपस में कहते हैं—"देखिए कैसे हैं गोविन्दराम जी! कितने शांत! कितने सीधे! पचीस वर्षों से पड़ोस में रहते हैं पर किसी को पता तक नहीं होता कि वे इस पड़ोस में रहते हैं। इतना सज्जन मनुष्य बिरला ही होगा।" पर हमें ऐसा सज्जन नहीं चाहिए। चुपचाप अत्याचार सहने वाला व्यक्ति यदि सज्जन माना जाय और यदि ऐसे सज्जनों की भरमार हो तो हिन्दू समाज दुनियां में जीवित नहीं रह सकता और फिर कभी भी हिन्दुस्थान उच्च अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता।

२३—जिस ढंग की मनुष्य की भावना हो, उसी ढ़ंग का उसका बर्ताव होता है। इसलिए महत्ता है केवल भावना की। देहली की मुगल सल्तनत जैसी पचासों सल्तनतें ठुकराकर मिट्टी पलार्द करने की और वैसी ही पचासों नई सल्तनतें अपनी भुजाओं के बल पर पैदा करने की ताकत रखनेवाला महाराजा जयसिंह मुगलों का गुलाम बनकर क्यों रहा? और चंद मरहटों के सहारे स्वराज्य स्थापना करने का प्रयत्न करनेवाला शिवाजी हिंदू–पद–पादशाही की स्थापना करने में क्यों सफल रहा? इसका कारण पहिले की आत्म–गौरवशून्यता और दूसरे की आत्मगौरवपूर्ण भावना ही है। आत्मगौरव की इस भावना को, जो आज नष्ट प्राय:सी हो गई है, फिर से हिंदू समाज में जगाने की परम आवश्यकता है।

२४—आजकल हमारी बहुत प्रशंसा हो रही है। पर इसके कारण घमंड में आकर यह न समझ बैठियेगा कि हमने कोई महान् कार्य कर डाला है। इस प्रकार का व्यक्तिश: अभिमान तो खराब है ही पर संघश: भी ऐसा अभिमान करना अयोग्य होगा। लोग हमारी प्रशंसा करते हैं, इस बात का यही अर्थ लगाना चाहिये कि उन्हें हमारा कार्य प्यारा लगता है। प्रशंसा से फूल कर कुप्पा न होते हुये, और अधिक लगन से कार्य में रत हो जाना चाहिये। प्रशंसा सुनकर मन प्रफुल्लित तो अवश्य होता है पर साथ ही साथ हमें यह भी न भूलना चाहिए कि इससे हमारी जिम्मेवारी भी बढ़ती जाती है।

२५—संघ को केवल मोटी–बुद्धिवाले और कल्पना–शून्य अनुयायी निर्माण नहीं करना है। राष्ट्र–नेता उत्पन्न करने हैं। आप में से हरएक को योग्य नेतृत्व करना है। यह अपेक्षा आप से है। अत: ऐसा न समझना चाहिए कि केवल एक घण्टे के लिए संघ में आने से ही हमारे कर्तव्य की इति श्री हो जाती है। संघ के कार्यक्रमों के अतिरिक्त बाकी का समय इसी के लिए छोड़ा गया है कि आप उत्तम रीति से विद्यार्जन कर, शीघ्रातिशीघ्र बड़े होने पर संघ–कार्य कर सकें। परन्तु आपका व्यवहार सदा इसी दृष्टिकोण से हो कि विद्यार्जन के बाद संघ–कार्य ही आपके जीवन का एक मात्र ध्येय है।

२६—संघ का स्वयंसेवक चाहे जहां रहे, उसे सदा संघ–कार्य के लिये प्राणपण से चेष्टा जारी रखनी चाहिये। वह जिस गांव में गया हो, वहां यदि संघ की शाखा हो तो उसे नियमित रूप से शाखा में उपस्थित होकर उस शाखा की उन्नति करने का प्रयत्न करना चाहिए। वहां संघ शाखा न हो तो संघ के तत्त्व का प्रचार करके संघ–स्थापना का प्रयत्न करना चाहिये।

२७—स्वयंसेवक को चाहिये कि संघ के ध्येय को उत्तम प्रकार से समझ–बूझकर सदा अपना व्यवहार उस ध्येय के लिए पोषक ही रखे।

२८—हम यद्यपि भिन्न–भिन्न शाखाओं में काम करते हैं, फिर भी स्वयंसेवक–भरती के विशेष कार्य की जिम्मेवारी सभी पर है। इस बात को न भूलते हुये, इस कार्य को मुख्य कार्य मानते हुये हरएक को मनसा–वाचा–कर्मणा इस कार्य में लगे रहना चाहिये।

२९—यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि संघ पर एक ओर से प्रशंसा और पुष्पवृष्टि हो और दूसरी ओर से संघ–कार्य का विरोध हो। क्यों कि आज तक का अनुभव यही रहा है कि हर तरह के सत्कार्यों के मार्ग में ऐसी बाधाएँ आती ही हैं। परन्तु यह संतोष का विषय है कि इसी बीच में यह बात जनता की दृष्टि में भी आ रही है। स्वयंसेवकों की निष्ठा की नींव पर खड़ा हुआ यह संघ इस तरह के किसी भी विरोध की परवाह न करते हुये उत्तरोत्तर प्रगति कर रहा है और भविष्य में भी प्रगति करता ही जायगा।

३०—संघ के सिद्धांतों पर अटल श्रद्धा रक्खो। हिम्मत और आत्म-विश्वास से काम लो। हम लोग स्वदेश, स्वधर्म और अपनी संस्कृति की रक्षा के लिये कटिबद्ध हैं। हमें सत्य का अधिष्ठान है। अतः किसी भय, संकट से घबड़ाने का कोई कारण नहीं। आपत्तियां यों ही उपस्थित नहीं होतीं। वे तो परमात्मा की कृपा सूचित करती हैं। संकटों द्वारा हमें कसौटी पर कसने और उसमें सफल होने पर आगे का उन्नत मार्ग हमें दिखाने की ईश्वरेच्छा इससे व्यक्त होती है। इसीलिए इस श्रद्धा को लेकर आगे बढ़ो कि जहां आपत्तियों के पहाड़ टूट पड़ते हों। वहीं पर अधिक से अधिक संघ–कार्य हो सकेगा।

३१—कोई यह अभिमान न करे कि किसी खास व्यक्ति के भरोसे ही संघ-कार्य चलता है। संघ-कार्य किसी एक व्यक्ति का नहीं, अपितु सारे समुदाय का है। वह तो हम सबका सांघिक कार्य है। हमें अभी कई स्थानों में संघ का पर्याप्त मात्रा में काम करना है। यह कार्य करने के लिए तरुणों और वृद्धों को यथा सामर्थ्य अग्रसर होना चाहिए। जो लोग यह पूछते हैं कि संघ ने आज तक क्या किया, उनसे मैं यह पूछूंगा कि आप स्वयं संघ के लिए क्या करने को उद्यत हैं।

३२—केवल प्रतिदिन संघस्थान पर उपस्थित हो जाने मात्र से संघ के प्रति तुम्हारा कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। सच्चा कार्य तो इसके आगे ही है। हमें सारे हिंदुस्थान में संघ-शाखाओं का जाल फैलाना है। अपने कार्य की दृष्टि से इसके महत्व को समझ लो। कार्य अभी कितना शेष है, इसको ध्यान में रखते हुए तेजी के साथ कदम आगे बढ़ाओ। एक अनोखा संगठन इस नातेसे तुम अपने संघ के विषय में सोचो। महापुरुषों के समान महान् संस्थाएं भी अपने अल्प जीवन में प्रचण्ड कार्य कर छोड़ती हैं। प्रत्येक स्वयंसेवक की कार्यकुशलता का पूरा-पूरा लाभ मिलनें पर ही संघ की प्रगति शीघ्र हो सकेगी और जीते जी हम अपने कार्य की पूर्ति देख सकेंगे।

३३—संगठन में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से कुछ कहता नहीं। केवल स्वयं कार्य करता जाता है। जहां बार बार कहने सुननें के मौके आते हों, वहां यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि काम नहीं हो रहा है। संघ के स्वयंसेवक आपस में मुंह से कुछ नहीं कहते। बोलते हैं उनके अन्तःकरण। उनकी भाषा हृदय की भाषा होती है और वे एक दूसरे की ओर केवल देखते हुए—मूक रहते हुए—कार्य कर सकते हैं, उसे बढ़ा सकते हैं। केवल परस्पर दृष्टि-पात से ही वे अपने विचार आपस में एक दूसरे को समझा सकते हैं।

३४—हिन्दू संस्कृति की रक्षा करने के लिए जो बलशाली संगठन तैयार करना हैं उसका तात्पर्य केवल संख्या बढ़ाना नहीं, अपितु संघ के लोगों में यह आत्म-विश्वास बढ़ाना है कि हम वह कार्य कर सकेंगे।

३५—संघ का ध्येय हिन्दू समाज में इतना बल और ऐसा संगठन उत्पन्न कर देने का है कि जिसके कारण हमारे हिन्दुस्थान देश में आज रहने वाले किंवा भविष्य में यहां पदार्पण करने की आशा रखने वाले संसार के कोई भी विदेशी लोग हिन्दू लोगों के सिर पर सवार होने का दुःसाहस न कर सकें।

३६—हिन्दू जाति का सुख ही मेरा और मेरे कुटुंब का सुख है; हिन्दू जाति पर आने वाली विपत्ति हम सभी के लिए महासंकट है और हिन्दू जाति का अपमान हम सभी का अपमान है। ऐसी आत्मीयता की वृत्ति हिन्दू मात्र के रोम रोम में व्याप्त होनी चाहिए। यही तो है राष्ट्र-धर्म का मूलमंत्र।

३७—जिसे अपने देश और अपने देशबान्धवों के सिवा और किसी का मोह नहीं, अपने धर्म और धर्म-कार्य के अतिरिक्त कोई व्यवसाय नहीं, अपने हिन्दू-धर्म की अभिवृद्धि होकर हिन्दू राष्ट्र के प्रतापसूर्य को तेजस्वी रखने के अतिरिक्त अन्य कोई स्वार्थ-लालसा नहीं, उसके हृदय में भय, चिंता या निरुत्साह पैदा करने का सामर्थ्य संसार भर में किसी में हो ही नहीं सकता।

३८—क्या संघ-कार्य आपको दिल से अच्छा लगता है? क्या आपको अहर्निश संघ-कार्य की धुन लगी रहती है। क्या हम में इस कार्य के प्रति आत्मीय-भाव पैदा हो गया है, कि इस कार्य के सिवा ओंर कुछ न तो सूझता है, न दिल में चैन ही पड़ती है? दिन रात के चोंबीस घण्टों में से हम कितने घण्टे संघ का प्रत्यक्ष कार्य या संघसम्बन्धी विचार करने में व्यतीत करते हैं?

★ ★ ★

P. O. Arra

39
25
5
69

15×12
180

6